१५१-०० श्री व० स्था० जैन श्रावक संघ घरणगाँव

२०१-०० श्रीमान् गुप्तदानीजी " (पू० खा०)

१०१-०० " गोकुलचन्दजी रूपचन्दजी कोठारी कोपरगाँव (अ० नगर)

आपकी धर्मश्रद्धा और उदारता प्रसिद्ध है।

१०१-०० श्री कन्हैयालालजी लूंकड़ की ध. प. सुन्दरबाई (शोलापुर)

आप ने अपने सुपुत्र ज्ञानचंद के जन्मोपलक्ष में यह दान किया है। आपका सारा परिवार धार्मिक वातावरण में रँगा है।

१०१-०० श्री बंसीलालजी कर्णावट देवला (नासिक)

श्रीमान् रायचन्दजी के आप सुपुत्र हैं। पहले आप खरड़ में रहते थे, किन्तु पिछले दस वर्षों से यहाँ आकर बस गये हैं। आपने अपनी माताजी श्री सुन्दरबाई के कहने से यह दान किया है। आपका सारा कुटुम्ब तपस्वी है।

१०१-०० श्री गुलाबचंदजी लूंकड़ देवला (नासिक)

आपने अपने स्व० पिताजी श्रीमान् छोगमलजी की स्मृति में यह दान किया है। आपके पिताजी बड़े तपस्या-प्रेमी थे। सन् १९२१ की बात है। उस समय विहार करते हुए तपस्वी मुनि श्री गणेशीलालजी म० सा० बाजगाँव में जब पधारे थे, तब उन्होंने बड़े उत्साह से सेवा की थी और अपनी ओर से प्रेरणा देकर अनेक लम्बी-लम्बी १३ उपवास तक की तपस्याएँ करवाई थीं। आपकी माताजी स्व० श्रीमती गंगाबाई भी तपस्विनी थीं।

१०१-०० श्रीमान् धर्मचन्दजी मोदी उमराणा (नासिक)

आपने अपने स्व० पिताजी श्री रीधकरणजी की स्मृति में अपनी माताजी श्रीमती गंगूबाई के कहने से यह दान किया है। साधुसन्तों के पधारने पर आप सेवा का खूब लाभ लेते हैं। आप उमराणे के एक प्रमुख श्रावक हैं। आपकी धर्मभावना भी काफी प्रबल है।

५१-०० श्रीमान् लालचन्दजी हीराचन्दजी सँकलेचा देवला
५१-०० ,, जोगराजजी कुन्दनमलजी वेदमुथा
लाखना (संबलपुर)
५१-०० ,, प्रेमराजजी पन्नालालजी मेहर हिंगोना (पू. खा.)
(अठाई तप के उपलक्ष में)
५१-०० ,, पीरचंदजी लालचंदजी साँड एलदा ,,
४१-०० ,, मोतीलालजी सुखलालजी छाजेड़ एलदा ,,
३१-०० ,, सुगनमलजी तेजमलजी सुराणा देवला (नासिक)
३१-०० ,, उत्तमचंदजी केशरीमलजी बागरेचा दहिवद
(पू. खा.)
२५-०० ,, हंसराजजी पोपटलालजी संकलेचा देवला
२५-०० ,, छबीलदासजी हंसराजजी कर्णावट ,,
२५-०० ,, छबीलदासजी की ध० प० कचराबाई ,,
२१-०० ,, उत्तमचंदजी हुक्मीचंदजी संकलेचा ,,
२१-०० ,, कन्हैयालालजी कोठेड़ की ध० प० सरसबाई
चांवल खेड़ा (पू. खा.)
१५-०० ,, अमरचन्दजी तखतमलजी काँकरिया हिसाला
११-२५ ,, प्रेमराजजी प्रतापमलजी रतनपूरी वोरा ,,
११-०० ,, धनराजजी रावतमलजी चौरडिया कमखेड़ा
(प. खा.)

११-०० श्रीमती पतासीबाई भ० उत्तमचंदजी बागरेचा दहिवद (पू. खा.)
११-०० ,, मदनबाई भ० सुगनचंदजी चाँदवड़
११-०० ,, उमरावबाई टिटवा
५-०० श्रीमान् हस्तीमलजी शिवदानमलजी लूणावत एलदा

मैं अपनी संस्था की ओर से उपर्युक्त सभी दानवीर सज्जनों का हार्दिक-आभार स्वीकार करता हूँ।

[सूचना:—स्मरण रहे कि उपलब्ध आर्थिक सहायता के अतिरिक्त होने वाला खर्च संस्था ने उठाया है।]

—कन्हैयालाल छाजेड़
मन्त्री:—श्री अमोल जैन ज्ञानालय
गली नम्बर २, धूलिया (प.खा.)

१५-७-१९५८]

—: प्रास्ताविक :—

भव्यात्माओं !

संसार में सभी प्राणी अज्ञानान्धकार में भटकने के कारण नाना प्रकार के कष्ट पा रहे हैं। अँधेरे में यथार्थ ज्ञान के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है। प्रकाश दो प्रकार का होता है:— द्रव्य प्रकाश और भावप्रकाश। सूर्य, चन्द्र, दीपक आदि का प्रकाश द्रव्यप्रकाश है, इससे भौतिक पदार्थ आँखों द्वारा दिखाई देते हैं। भाव प्रकाश (तीर्थंकर) देव का होता है, उससे आध्यात्मिक पदार्थ दिखाई देते हैं। इस ग्रन्थ में देव-सम्बन्धी यथाशक्ति परिचय देने का प्रयत्न किया गया है।

—: देव :—

देवों का सौन्दर्य अनुपम होता है। दिव्य आकृति धारण करने के कारण वे "देव" कहलाते हैं।

केवलज्ञान के कारण उनका दिव्य आत्मप्रकाश सारे संसार में प्रकट हो जाता है, इसलिए भी वे "देव" कहे जाते हैं।

ज्ञान, दर्शन और चारित्र ही मोक्ष का मार्ग है। जैसा कि आचार्य उमास्वामी ने अपने तत्त्वार्थसूत्र में कहा है:—"सम्यग्-दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।" शास्त्रकारों के शब्दों में यही बात यों कही गई है—

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गुत्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं॥

अर्थात् केवलदर्शी जिनवरों ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—यही मोक्ष का मार्ग बताया है। कहने का आशय यह है कि जो मोक्षमार्ग का यथार्थ उपदेश देते हैं, वे "देव" कहलाते हैं।

सूर्य का जो प्रकाश दिखाई देता है, वह वास्तव में सूर्य के विमान का है; परन्तु देव की तो आत्मा ही स्वयं प्रकाशमान होती है।

—: अरिहन्त :—

यों तो प्रत्येक आत्मा में दिव्य प्रकाश होता है, किन्तु कर्मों के सघन आवरणों में छिपा रहता है। तपस्या आदि साधनाओं के द्वारा जो ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार घनघाति कर्मों की निर्जरा करते हैं, उनका आत्मप्रकाश प्रकट हो जाता है। कर्म ही आत्मा के वास्तविक शत्रु हैं, जैसा कि एक आचार्य कहते हैं—

अट्ठविहंपि य कम्मं, अरिभूयं होइ सव्वजीवाणं।
तं कम्ममरिं हंता, अरिहंता तेण वुच्चंति॥

अर्थात् सभी (संसारी) जीवों के लिए आठ प्रकार के कर्म शत्रु-रूप हैं। उस कर्म रूपी अरिगण (शत्रुओं) का जो हनन करते हैं, वे अरिहंत कहलाते हैं। अरिहत भी देव का ही वाचक शब्द है।

अरिहन्त को "अर्हन्त" भी कहते हैं। यह शब्द संस्कृत की "अर्ह पूजायाम्" धातु से बना है, इसलिए अर्हन्त का अर्थ है—पूज्य (भक्ति करने योग्य)। अर्हन्त देव मनुष्यों के ही नहीं, इन्द्रों के भी पूज्य हैं।

अरिहंत को "अरहंत" भी कहते हैं, जिसका संस्कृत रूपान्तर "अरथान्त" होता है। 'रथ' शब्द सब प्रकार के परिग्रह का

द्योतक है और 'अन्त का अर्थ है—मृत्यु। इस प्रकार परिग्रह और मृत्यु से जो सर्वथा मुक्त हैं, वे "अरहंत" देव हैं।

इन्हीं से मिलता-जुलता एक शब्द "अरुहन्त" भी है। 'रुह' धातु का अर्थ है-सन्तान या परम्परा। बीज से अंकुर पैदा होता है और अंकुर से बीज। इस प्रकार बीज और अंकुर की परम्परा शुरू हो जाती है। परन्तु यदि बीज को जला दिया जाय या भून दिया जाय तो फिर अंकुर पैदा नहीं होता। इसी प्रकार जिन्हाने कर्मरूपी बीज को जला दिया है और इसी कारण जो जन्म-मरण की परम्परा से मुक्त हो गये हैं, वे "अरुहन्त" कहलाते हैं। जैसा कि किसी कवि ने कहा है:—

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तम्, प्रादुर्भवति नाऽङ्कुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति भवाङ्कुरः॥

—: वीतराग :—

इस प्रकार अरिहंत शब्द के भिन्न-भिन्न रूपों में अलग—अलग गुणों का परिचय प्राप्त होता है। देव के लिए अरिहंत शब्द जैसे विशेषण है, वैसे ही वीतराग भी विशेषण है। वकील, डाक्टर, सेठ, मुनीम आदि नाम किसी व्यक्ति के नहीं होते। जो वकालत करता है, वकील है। जो इलाज करता है, डाक्टर है। जो व्यापार करता है, सेठ है। जो सेठ का हिसाब सँभालता है, मुनीम है। इस प्रकार इन शब्दों से अमुक व्यक्ति के अमुक गुणों का परिचय मिलता है। ठीक उसी तरह वीतराग शब्द भी व्यक्तिवाचक नहीं, गुणवाचक है। वीतराग शब्द से मालूम होता है कि वह व्यक्ति राग से रहित है।

वीतराग बनने के लिए वर्ण-जाति का या सम्प्रदाय का कोई बन्धन नहीं है। राग जिसका नष्ट हो चुका है, वह व्यक्ति वीतराग है, फिर भले ही वह किसी भी वर्ण, जाति या सम्प्रदाय का क्यों न हो। सिद्ध के पन्द्रह भेदों में "स्वलिंगसिद्ध" और "अन्य-लिंगसिद्ध"-ये शब्द इसी बात को प्रकट कर रहे हैं।

स्कूल में हजारों विद्यार्थी पढ़ते हैं' किन्तु स्वर्णपदक तो विजेता को मिलता है, उसी प्रकार देव शब्द संसार में हजारों-लाखों के लिए प्रयुक्त होता है, किन्तु सच्चा देव तो वही है, जो राग को जीत चुका है। हमारा मस्तक केवल वीतराग को ही झुकाना चाहिये। जैसा कि एक जैनाचार्य ने लिखा है:—

भवबीजांकुरजलदाः,
रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा
हरो जिनो वा नमस्तस्मै॥

—हरिभद्रसूरिः

अर्थात् संसार (जन्म-मरण-चक्र) रूपी बीज को अंकु-रित करने में मेघ के समान जो रागादि हैं, उन्हें जिसने क्षय किया है, उसे नमस्कार है, फिर भले ही वह (ब्राह्मणों का) ब्रह्मा हो, (वैष्णवों का) विष्णु हो, (शैवों का) शिव हो या (जैनों का) जिन।

जिस में गुण ही गुण हों, दोष बिल्कुल न हो, वही देव है। यह बात नीचे लिखे शब्दों में कही गई है:—

यस्य निखिलाश्च दोषाः,
न सन्ति सर्वे गुणाश्च विद्यन्ते।

ब्रह्मा वा विष्णुर्वा,
हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥
—हरिभद्रसूरिः

सचमुच जो दोषों से सर्वथा रहित है, वही प्रणम्य परमात्मा है। हेमचन्द्राचार्य ने यह बात बहुत स्पष्टता के साथ इन शब्दों में प्रकट की है:—

यत्र तत्र समये यथा तथा
योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया।
वीतदोषकलुषः स चेद्भवान्
एक एव भगवन्! नमोऽस्तु ते ॥

अर्थात् किसी भी परम्परा (सम्प्रदाय) में, किसी भी रूप में, किसी भी नाम से आप क्यों न प्रसिद्ध हों—यदि आप दोषों की कलुषता से रहित हैं तो हे भगवन्! आप मेरे लिए एक ही हैं—आपको नमस्कार।

पुराणकारों ने—हिन्दुओं के ऋषियों ने भी रागद्वेष से रहित को ही देव मानते हुए घोषित किया है:—

"रागद्वेषविनिर्मुक्तस्तं देवं ब्राह्मणा विदुः ॥"
—शिवपुराण (ज्ञान संहिता २४।२६)

— देवों के प्रकार —

अब देवों के भेद पर थोड़ा सा विचार करें। देवों के दो प्रकार हैं:—भापक और अभापक या साकार और निराकार अथवा तीर्थंकर और सिद्ध।

भापक का अर्थ है, बोलने वाले-उपदेश देने वाले। साकार का अर्थ है-शरीर वाले-आकृति वाले। तीर्थंकर का अर्थ है-धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले।

साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चार प्रकार के संघ को ही तीर्थ कहते हैं। ऐसे तीर्थ को प्रस्थापित करने वाले तीर्थङ्कर कहलाते हैं।

--: अवर्णनीयता :--

तीर्थंकर देव के या परमात्मा के गुणों का वर्णन कितना भी किया जाय, अधूरा ही रहेगा। क्योंकि परमात्मा के गुण अनन्त हैं, इसलिए सबका वर्णन हो ही नहीं सकता! भले ही उनका वर्णन करने का प्रयत्न स्वयं सरस्वती ही क्यों न करे? कहा गया है:—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवर शाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम्
तदपि तव गुणानामीश! पारं न याति॥

अर्थात् हे परमेश्वर! यदि समुद्ररूपी दवात में काजल के पहाड़ (के बराबर ढेर) को घोल कर स्याही बनाई जाय, कल्प-वृक्ष की मजबूत शाखा की कलम बनाई जाय और फिर पृथ्वी रूपी कागज पर स्वयं सरस्वती अनन्तकाल तक लिखती रहे तो भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकती।

—: गुण-वर्णन :—

यह सब कुछ जानते हुए भी भक्त चुप नहीं रह सकता ! क्यों कि उसे परमात्मा के गुणों का वर्णन करने में आनन्द आता है, इसलिए वह अपनी शक्ति के अनुसार वर्णन किये बिना नहीं रहता।

आचार्य अभयदेवसूरि ने अपने किसी ग्रन्थ के मंगलाचरण में लिखा है:—

सर्वज्ञमीश्वरमनन्तमसङ्गमग्र्यम्
सार्वीयमस्मरमनीशमनीहमिद्धम्
सिद्धं शिवं शिवकरं करणव्यपेतम्
श्रीमज्जिनं जितरिपुं प्रयतः प्रणौमि ॥

अर्थात जिन्होंने रागद्वेष, आदि शत्रुओं को जीत लिया है, उन शोभा-युक्त जिनदेव को मैं सविधि प्रणाम करता हूँ। वे जिन-देव कैसे हैं ?

सर्वज्ञ हैं

सब कुछ जानते हैं। इन्द्र ने भगवान् की स्तुति जिन शब्दों में की है, उन्हें "शक्रस्तव" कहा जाता है। उन शब्दों में "सव्व-एणूणं सव्वदरिसीणं" ये दो शब्द भी आते हैं, इससे मालूम होता है कि स्वयं देवराज इन्द्र भी भगवान् की सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता को स्वीकार करते हैं।

वे त्रिकाल त्रिलोक के समस्त भावों को प्रत्यक्ष जानते और देखते हैं। शास्त्रकार कहते हैं:—अप्पा सो 'परमप्पा' आत्मा ही

अग्रय हैं

जो असंग हैं, वे ही अग्रय कहलाते हैं। संसारी प्राणी कनक, कान्ता, विषय, कषाय, व्यसन और कर्मों के संग में फँसे हुए हैं, इसलिए जो असंग हैं वे जन-साधारण की अपेक्षा श्रेष्ठ या अग्रगण्य कहलाते हैं।

इसलिए भी परमात्मा को अग्रय कहा गया है कि वे लोक के अग्रभाग में विराजमान होने के अधिकारी हैं। सिद्ध देव तो वहाँ पहुँच कर विराजमान हो ही गये हैं, किन्तु साकार सर्वज्ञ देवों ने भी वहाँ का रिजर्वेशन प्राप्त कर लिया है। इसलिए उन्हें भी अग्रय कहा गया है, क्योंकि उनको उस स्थान पर निश्चित रूप से जाना है।

सार्वीय हैं

अग्रय वे ही कहला सकते हैं कि जो सार्वीय (सब का कल्याण करने वाले) बनते हैं। भगवान् को शक्रस्तव में "धम्म-सारही" धर्म रूपी रथ को हांकने वाले कहा गया है। वे धर्मरथ में अपने साथ ही अन्य अनेक भव्यजीवों को बैठा कर मोक्षनगर में ले जाते हैं।

एक पत्तन में एक उदार सेठ रहते थे। एक दिन उन्हें विचार आया कि इस पत्तन में आर्थिक-दशा बिगड़ जाने के कारण मेरे बहुत से मानव-बन्धु झोंपड़ियों में रहते हैं, रूखी-सूखी खाते हैं, फटे-टूटे कपड़े पहिनते हैं, इसलिए मेरा कर्त्तव्य है कि मैं उनको सहायता पहुँचाऊँ। दूसरे दिन उन्होंने सब को साथ ले कर व्यापार करने के लिए परदेश जाने के विचार से एक आदमी को भेज कर घर-घर सूचना करवा दी कि "जिसे भी व्यापार के लिए सेठजी

के साथ चलना हो, वह तैयार हो जाय—यदि उसके पास पूँजी न होगी तो पूँजी दी जायगी—व्यापार करना न आता होगा तो सिखाया जायगा।"

तीसरे दिन गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य-इन चारों प्रकार के पदार्थों से गाड़ियाँ भर कर सैंकड़ों मनुष्यों के साथ सेठजी रवाना हुए। रास्ते में एक अटवी आई। रातको वहीं पड़ाव डाला गया। सब लोग निश्चिन्त होकर सो गये, किन्तु सेठजी को जिम्मेदारी के कारण नींद नहीं आई। वे बैठे-बैठे माला फिरा रहे थे कि कुछ दूर से "बचाओ--बचाओ!" की चिल्लाहट सुनाई पड़ी। माला छोड़कर सेठजी उस ओर गये तो देखते हैं कि एक आदमी को पेड़ से बाँध कर कुछ चोर उसे पीट रहे हैं। सेठजी की फटकार सुनकर चोर भाग खड़े हुए।

सेठजी ने उस बँधे हुए आदमी के बंधन खोले-उसके घावों पर मरहमपट्टी की और फिर उसे भी अपने साथियों में सम्मिलित करके परदेश में ले गये।

ठीक उसी प्रकार भगवान भी मोक्ष-नगर में अनन्त सुख पाने के लिए जब जाते हैं, तब रास्ते में संसार रूपी अटवी में राग-द्वेष के बन्धन में फँस कर विषयकषाय को हंटर खाने वाले दुःखी प्राणियों को बचाकर उन्हें अपने साथ ले जाते हैं। सेठजी जैसे चार प्रकार के द्रव्य साथ ले गये थे, उसी प्रकार भगवान् भी ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप साथ ले जाते हैं।

भगवान् की "अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं" आदि अनेक विशेषणों से स्तुति की गई है। वे जीवों को अभय प्रदान करते हैं, क्यों कि यही सर्वश्रेष्ठ दान कहा गया है:— "दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं॥" अभय देने के बाद ज्ञानचक्षु

अर्थात् विवेक प्रदान करते हैं। यदि आचरण न हो, तो कोरा विवेक किस काम का? इसलिए विवेक देने के बाद मार्ग बताते हैं-अर्थात् आचरण सिखाते हैं। यह सब इसलिए करते हैं कि वे सब का कल्याण करने वाले हैं-सार्वीय हैं।

अस्मर हैं

निष्काम हैं—निर्विकार हैं-वासना से अलिप्त हैं। काष्ठ में जैसे अग्नि छिपी रहती है अथवा दियासलाई में जैसे ज्वाला छिपी रहती है, वैसे ही सभी प्राणियों में वासना छिपी रहती है।

सार्वीय अर्थात् सबका कल्याण करने वाला वही बन सकता है जो कामवासना को जीत ले। उसे जीतना बड़ा कठिन है, क्यों कि उसका साम्राज्य बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ है।

माण्डलिक राजा का १ देश में, वासुदेव का ३ खण्ड में और चक्रवर्ती का ६ खण्ड में राज्य होता है, किन्तु कामदेव का राज्य तीन लोक में होता है। देवलोक में कामवासना का परिमाण कम नहीं है। कहते हैं कि एक-एक रतिक्रीड़ा में इन्द्र को काफी लम्बा समय लग जाता है? तिर्च्छालोक में पशुपक्षियों के और मनुष्य के काम का परिचय इस दोहे से मिलता है:—

काँकर पाथर जे चुगें, तिन्हें सतावें काम।
सीरा-पूरी खात जे, तिनकी जानें राम॥

कबूतर की जठराग्नि इतनी तीव्र होती है कि वह कंकर को चुग कर भी पचा लेता है—ऐसा सुनते हैं। कहने का आशय यह है कि कंकर जैसी निस्सार वस्तु खाने वाले कबूतर को भी काम वासना सताती रहती है, तब हलुआ-पूरी जैसे सारयुक्त पदार्थों के भक्षण करने वाले मनुष्यों की वासना के विषय में क्या कहा जाय! इस विषय में एक दृष्टान्त याद आ रहा है:—

राजगृही नगरी में महाराज श्रेणिक अपनी महारानी चेलना के साथ सानन्द रहते थे। एक दिन महाराज अपने महल की ऊँची मंजिल में रानी के साथ रात को टहल रहे थे कि सहसा उनकी नजर एक मकान पर पड़ी। वहाँ के भीतरी दृश्य को देख कर उनके मुँह से निकल पड़ाः-धिक्कार है इसे।"

ये शब्द सुनते ही महारानी चौंक पड़ी और उसने विनय-पूर्वक पूछाः-"नाथ! यहाँ तो इस समय मेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं है। पूछती हूँ कि आपने धिक्कार किसे दिया है? क्या मुझसे कोई भूल हो गई?"

"नहीं प्रिये! तुम जैसी पतिपरायणा सुशीला पत्नी से कभी कोई भूल हो नहीं सकती। मैंने धिक्कार तुम्हें नहीं दिया है। लेकिन किसे दिया है? यह जानना भी व्यर्थ है। हम यहाँ के शासक हैं-अनेक तरह के विचार हमारे मन में आते-जाते रहते हैं; इस-लिए धिक्कार का कारण मत पूछो।" महाराज ने कहा।

किन्तु नारीहठ के आगे उनकी टालमटूल नहीं चल सकी, इस लिए अन्त में उस मकान की ओर इशारा करते हुए महाराज ने कहाः-"वह देखो। वहाँ का दृश्य देखते ही समझ में आ जायगा कि मैंने किसे धिक्कार दिया है।"

महारानी चेलना ने ज्योंही उस ओर नजर डाली त्यों ही उसे समझ में आगया कि महाराज ने कामदेव को धिक्कार दिया है। बात यह थी कि उस मकान में ८०-९० वर्ष के पति-पत्नी का एक जोड़ा रतिक्रीड़ा में लगा था! महाराज श्रेणिक को विचार आया कि जो कामदेव बुढ़ापे में भी मनुष्य को सताता रहता है, उसे धिक्कार का पात्र ही समझना चाहिये।

महाराज ने उस घर का नम्बर नोट कर लिया और दूसरे दिन प्रातःकाल एक चाकर को वहाँ भेज कर बूढ़े और बुढ़िया को राजदरबार में बुलवा लिया।

महाराज के पास जाते समय साथ में कोई भेंट ले जाने का उस समय रिवाज था। इसलिए बूढ़े ने जवारी के चार दाने और बुढ़िया ने थोड़ी-सी राख एक पुड़िया में बाँध कर साथ ले ली। दरबार में पहुँच कर दोनों ने अपनी अपनी भेंट राजा के सामने रख दी।

महाराज श्रेणिक को दी जाने वाली इस तुच्छ भेंट को देख कर उपस्थित सभासदों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे आपस में गुनगुनाहट और कानाफूसी करने लगे। सभा के कोलाहल को देख कर महाराज ने आगन्तुकों से कहा:—"आपकी इस भेंट में कोई रहस्य मालूम होता है, सो उसे प्रकट करके दर्शकों के आश्चर्य को शान्त कीजिये।"

यद्यपि महाराज इस भेंट के रहस्य को समझ गये थे, फिर भी उन्होंने आगन्तुकों के मुँह से ही खुलवाना ठीक समझा।

बूढ़े ने कहा:—"महाराज! जब तक जवारी खाता रहूँगा; तब तक वासना नहीं छूटेगी।" यही मेरी भेंट का आशय है।"

इसके बाद बूढ़ी ने कहा:—"महाराज! जब तक मेरे इस शरीर की राख नहीं हो जाती, तब तक वासना नहीं छूटेगी।" मेरी भेंट का बस यही रहस्य है।

कथा का आशय यह है कि संसार में प्राणिमात्र का हाल ऐसा ही है, जैसा उन बूढ़े बूढ़ियों का है। शास्त्रकारों ने आहार आदि चार संज्ञाओं में मैथुन को भी एक संज्ञा माना है। इससे

सिद्ध होता है, कि सभी संसारी जीवों में मैथुन की प्रवृत्ति है-काम-वासना है; जिन्होंने इस काम पर विजय पाई है, वे परमात्मा धन्य हैं ! इसीलिए तो उनके विशेषणों में "अस्मर" भी एक विशेषण है।

—: अनीश हैं :—

उनका कोई मालिक नहीं है । पहले कहा जा चुका है कि काम का राज्य तीनों लोक में फैला हुआ है, इसलिए काम सबका मालिक है। उस काम को भी जिसने जीत लिया है, उसका मालिक दूसरा कौन हो सकता है ? कोई नहीं। परमात्मा अस्मर हैं-काम-विजेता हैं, इसीलिए अनीश भी हैं।

शालिभद्रजी का नाम कौन नहीं जानता ! बड़े पुण्यशाली थे वे। उनकी ३२ पत्नियाँ थीं। स्वर्ग से बहुमूल्य भोग सामग्री से भरी हुई ३३ पेटियाँ प्रतिदिन आया करती थीं–उनके लिए। इस विषय में कोई शंका न करनी चाहिये; क्यों कि प्रबल पुण्य के प्रताप से यह सब सम्भव है।

एक बार राजगृह नगरी के शासक महाराज श्रेणिक ने जब शालिभद्रजी की समृद्धि की तारीफ सुनी तो उनसे मिलने की इच्छा से मन्त्री अभयकुमार को साथ लेकर वे शालिभद्रजी के घर आये। वहाँ माता भद्रा ने उनका स्वागत किया और उन्हें अपने भवन की मंजिलें दिखाती हुई चौथी मंजिल में ले गई और वहाँ बिठा दिया। राजा और मन्त्री सुखासन पर बैठे-बैठे उस मंजिल की शोभा निरख रहे थे कि उधर माता छठी मंजिल पर पहुँची और वहाँ से सातवीं मंजिल पर बैठे हुए अपने पुत्र को पुकार कर कहने लगीः—'बेटा ! नीचे आओ। यहाँ के शासक आये हैं।'

ऊपर से आवाज आईः—'माँ ! तुम हो ही, फिर मुझसे

पूछने की क्या आवश्यकता है ? जो भी वस्तु आई है—सस्ती हो या मँहगी, खरीद कर डाल दो गोदाम में।'

इस बात से माँ ने समझ लिया कि बेटा इतना बड़ा हो गया, किन्तु अब तक अबोध है। व्यावहारिक ज्ञान से सर्वथा शून्य है। फिर जरा समझाते हुए बोली:—'बेटा ! वे कोई बेचने खरीदने की वस्तु नहीं, इस नगरी के राजा हैं, अपने नाथ हैं।'

यह सुन कर माता की आज्ञा का पालन करने के लिए शालिभद्रजी नीचे आए और उन्हें प्रणाम भी किया, किन्तु मन ही मन विचार करने लगे कि मुझ पर भी कोई नाथ है ? मेरा भी कोई शासक है ? धिक्कार है मुझे ! मालूम होता है कि पूर्व जन्म में पुण्य करते समय मैंने कोई कसर रख दी होगी। खैर, अब तो मुझे ऐसा कठोर धर्माराधन करना चाहिये कि अगले जन्म में सचमुच मेरा कोई नाथ न रहे।'

और फिर अपने इन विचारों को उन्होंने साकार बना ही लिया अर्थात् संयम का पालन करके वे अनीश बनने के प्रयत्न में लग गये। भगवान् भी "अनीश" हैं और वे दूसरों को भी "अनीश" बनने का मार्ग बताया करते हैं।

—: अनीह हैं :—

इच्छारहित हैं-निर्लोभ हैं। लोभ इतना घातक है कि विशुद्ध संयम का आराधन करते हुए जो साधु ११ वें गुणस्थान तक जा पहुँचता है, उसे भी गिरा कर पहले गुणस्थान में ला पटकता है। सूत्रकार कहते हैं:—

कहो पीइं पणासेइ, माणो विणयणासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो॥

अर्थात क्रोध प्रेम को, मान विनय को, माया मित्रों को नष्ट करती है; किन्तु लोभ सर्वनाशक है। इस प्रकार चारों कषायों में से प्रत्येक को एक-एक गुण का नाशक बताया है, किन्तु लोभ को सारे गुणों का नाशक बता कर उस को भयंकरता प्रकट की है।

इच्छाओं की पूर्ति करते रहने से एक दिन उनका अन्त आ जायगा ऐसा समझना भ्रमपूर्ण है; क्योंकि इच्छा को आकाश के समान अनन्त बताया है:—

"इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ॥"

इसलिए इच्छा का अन्त करने का एक ही उपाय है कि उनका त्याग कर दिया जाय। जो इच्छाओं का त्याग करते हैं, वे अनीह कहलाते हैं। अनीश बनने के लिए अनीह बनना जरूरी है।

३ह हैं

तेजस्वी हैं। तेज भी दो प्रकार का होता है:-चर्मचक्षु से दिखाई देने वाला और ज्ञानचक्षु से दिखाई देने वाला। तपस्या का तेज चमड़े की आँखों से भी दिखाई देता है, किन्तु केवलज्ञान का तेज केवल ज्ञानी ही समझ सकता है। प्रोफेसर के ज्ञान को प्रोफेसर ही समझ सकता है, गँवार नहीं। आत्मतेज को आत्मज्ञ ही जान सकता है, अन्य नहीं।

हाँ, द्रव्यतेज को—बाह्यतेज को—स्थूलतेज को गँवार भी समझ लेता है। प्रोफेसर का वेश और चेहरा देख कर साधारण आदमी भी पहिचान लेता है कि "ये प्रोफेसर साहब हैं।" परन्तु उनके ज्ञान को वह नहीं समझ सकता।

किसी मनुष्य के चेहरे पर तेज होता है और किसी के

अर्थात् जिन्होंने प्राचीनकाल से (आत्मा के साथ) बँधे हुए कर्मों को जला कर भस्म कर दिया है (वे सिद्ध हैं) अथवा जो निर्वृत्ति (मुक्ति) रूपी सौध (महल) में जा पहुँचे हैं, जिनके गुण विख्यात हैं, जिन्होंने धार्मिक अनुशासन (नैतिक नियमों का विधान) किया है और जिनके समस्त प्रयोजन सिद्ध हो चुके हैं, वे सिद्धदेव मेरा मंगल करने वाले हों।

प्राणी हैं

आचार्य कहते हैं कि सिद्धदेव भी प्राणी हैं, क्यों कि उनके भावप्राण होते हैं, भावप्राण चार हैं:—ज्ञानप्राण, दर्शनप्राण, वीर्यप्राण और सुखप्राण।

संसारी जीवों के प्राण दस होते हैं—५ इन्द्रियाँ, ३ बल १ श्वासोच्छ्वास और १ आयु। इन्हीं दस प्राणों में उपर्युक्त चार भावप्राण समाये हुए हैं। इन्द्रियप्राण में ज्ञान और दर्शन, बल प्राण में वीर्य तथा श्वासोच्छ्वास और आयु में सुख समाया हुआ है। दस द्रव्यप्राण जहाँ विकृत हैं—नश्वर हैं, वहाँ भावप्राण शुद्ध और शाश्वत हैं। यही दोनों का खास अन्तर है।

सिध्द कैसे बनते हैं ?

माधवमुनिजी नामक एक धुरन्धर विद्वान् साधु हो गये हैं उन्होंने अपनी सिद्धदेव की स्तुति में लिखा है:—

कर पणट्ठ कम्मट्ठ अट्ठगुण युक्त मुक्त संसार।
पायो पद परमिट्ठ तास पद वन्दूं बारंबार॥

आठ कर्मों को नष्ट करके जो परम विशुद्ध बन जाते हैं, वे
पद प्राप्त कर लेते हैं। शास्त्रकार ने कर्मों का दुष्प्रभाव सम-
के लिए आत्मा को उस तुम्बे की उपमा दी है, जिस पर आठ
मिट्टी का लेप किया गया हो और प्रत्येक लेप के बाद उसे
या गया हो—ऐसा तुम्बा पानी पर तैर नहीं सकता। तुम्बे
स्वभाव तैरने का है, फिर भी मिट्टी के भार से वह जल में डूब
गा! वैसे ही आठ कर्मों के भार से आत्मा संसार में डूबी
इधर से उधर भटक रही है। हाँ, यदि कर्मों की धीरे-धीरे
रा होती जाय तो आत्मा का भार हल्का होता जाय और
म स्वच्छ होने पर वह सिद्धशिला तक ऊपर उठ सकती है,
उसी प्रकार जैसे क्रमशः मिट्टी के आठों लेप नष्ट होने पर वह
छ तुम्बा पानी के ऊपर उठ जाता है और तैरने लगता है।

दूसरा उदाहरण चन्द्रमा का है। चन्द्रमा जैसे सुदि पक्ष में
शः बढ़ता हुआ पूर्णिमा को पूर्ण प्रकाशित हो जाता है, उसी
र विशुद्ध संयम का पालन करते हुए सारे कर्मों का क्रमशः
हो जाने से आत्मा में अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति
अनन्त सुख की ज्योति जगमगाने लगती है—इसी को आत्मा
सिद्ध अवस्था कहते हैं।

अब ज़रा सिद्ध-देव के विशेषणों पर विचार करें कि सिद्ध-
हैं कैसे।

—: आठ गुणों वाले हैं :—

आठ कर्मों के नष्ट होने से उनमें आठ गुण पैदा हो गये हैं।
स प्रकार हैं:-(१) अनन्त ज्ञान, (२) अनन्त दर्शन, (३) अनन्त
यिक सम्यक्त्व, (४) निराबाध सुख, (५) अटल अवगाहना,
अमूर्तत्व, (७) अगुरुलघुत्व (८) अनन्त वीर्य।

रोग से मुक्त होने पर स्वास्थ्य प्राप्त होता है, अविद्या दूर होने पर विद्वत्ता मिलती है, दरिद्रता हटने पर धनाढ्यता की प्राप्ति होती है; उसी प्रकार आठ कर्मों के नष्ट होने पर उपर्युक्त आठ गुणों की सिद्धि होती है। जिनकी आत्मा में उन आठ गुणों की सिद्धि है, वे सिद्ध कहलाते हैं।

—: अन्य गुण :—

सिद्धदेव के अन्य गुणों का वर्णन करते हुए श्री माधव मुनिजी ने अपनी सिद्धस्तुति में आगे कहा है:—

अज, अविनाशी, अगम, अगोचर, अमल, अचल, अविकार
अन्तर्यामी, त्रिभुवन स्वामी, अमित शक्ति भण्डार।

—: अज हैं :—

जिसका जन्म नहीं होता उसे 'अज' कहते हैं। संसार में सभी प्राणियों का जन्म होता है, किन्तु परमात्मा का जन्म नहीं होता। इसका कारण है–आयुकर्म का विनाश।

जिस घड़ी में चाबी नहीं दी जाती, वह बन्द हो जाती है, उसी प्रकार आयुकर्म की चाबी छूट जाने से सिद्धदेव के जन्म-मरण की परम्परा बन्द हो गई है।

जन्म देते समय माता को जितनी वेदना होती है, जन्म लेने वाले को उस समय उससे भी करोड़ गुनी वेदना होती है। अँगूठी यदि तंग हो जाय तो उँगली से बाहर निकालते समय उँगली को कितना कष्ट सहना पड़ता है? इस प्रकार उँगली के कष्ट से (पैदा होने वाले) बच्चे के कष्ट का अनुमान लगाया जा सकता है।

परमात्मा जन्मते समय होने वाली इस भयंकर वेदना से मुक्त हैं, क्योंकि वे जन्म नहीं लेते—"अज" हैं।

अविनाशी हैं

वे कभी नष्ट नहीं होते अर्थात् उनके गुणों का कभी नाश नहीं होता। संसार की भोग-सामग्री नश्वर है-शरीर भी। कहा गया है:—

"पानी का पतासा है त्यूँ तन का तमासा है।"

परमात्मा को शरीर नहीं होता, इसलिए वे अविनाशी हैं।

दूसरी बात ज्ञान की है। मति, श्रुति, अवधि और मनः-पर्याय-ये चारों ज्ञान अशाश्वत हैं-अस्थायी हैं, सिर्फ केवलज्ञान ही शाश्वत और स्थिर है। संसारी जीवों को जब तक केवलज्ञान नहीं हो जाता, तब तक ज्ञान की दृष्टि से वे विनाशी कहलाते हैं। परमात्मा का ज्ञान अविनाशी है, इसलिए वे अविनाशी हैं।

तीसरी बात उनकी स्थिति के सम्बन्ध में है। जीव चौरासी लाख जीवयोनियों में भ्रमण करता-रहता है, उसकी स्थिति किसी भी योनि में स्थायी नहीं होती-अटल नहीं होती; किन्तु भगवान् जब मोक्ष में पधारे हैं, तब से उनकी स्थिति स्थायी है और स्थायी रहेगी भी। क्योंकि उनकी स्थिति सादि अनन्त मानी गई है। इस दृष्टि से भी वे अविनाशी हैं।

अगम हैं

उनका वर्णन पूरी तरह से बुद्धि के द्वारा समझा नहीं जा सकता, क्योंकि यह अनुभव की वस्तु है। आत्मा अरूपी है और

उसके आठ रुचक प्रदेश भी। इसलिए उस स्वरूप को जाना नहीं जा सकता। उसे जानना बुद्धि के बस की बात नहीं है।

अगोचर हैं

अर्थात् अदृश्य हैं। आँखों से दिखाई नहीं देते। रूपी वस्तु ही आँखों से दिखाई देती है, सिद्धदेव अरूपी हैं, इसलिए अगोचर हैं।

दूसरी बात यह है कि जो वस्तु निकट हो, वही दिखाई देती है। सिद्धदेव यहाँ से सात राजू से भी ऊँचे हैं—इसलिए वे दिखाई नहीं देते।

अमल हैं

निर्मल हैं। मल से रहित हैं। मैल शरीर पर भी होता है। और मन पर भी। शरीर का मैल दूर करने के लिए मनुष्य स्नान करता है, किन्तु परमात्मा अशरीरी हैं, इसलिए शरीर के मैल से भी सर्वथा रहित हैं। मन का मैल है-संकल्प और विकल्प। इस मैल से भी वे रहित हैं-निर्विकल्प हैं। संसारी जीवों में कर्मों का जो मैल आता है, वह आस्रव के कारण आता है। सिद्धदेव आस्रव-रहित हैं इसलिए अमल हैं।

अचल हैं

स्थिर हैं—आवागमन से रहित हैं। संसार में हम देखते हैं कि सेठ, शिक्षक, न्यायाधीश, साहित्यकार, कवि आदि एक स्थान पर आराम से बैठे-बैठे अपना कार्य करते हैं, किन्तु नौकर, चाकर चपरासी आदि दौड़ धूप करते रहते हैं। जो जितना अधिक भटकता है, वह उतना ही साधारण आदमी समझा जाता है। परमात्मा एकदम अचल हैं, इसलिए सबसे अधिक श्रेष्ठ हैं।

बहुत-से भक्तों की मान्यता यह है कि भगवान् यहाँ आते , इसीलिए वे संकटों के समय उसे बुलाते रहते हैं। मेरी समझ भगवान् अशरीरी हैं, इसलिए आ नहीं सकते और यदि आते हैं तो फिर बड़े बड़े महात्माओं ने जो उन्हें "अचल" विशेषण दिया है, वह छिन जायगा।

हाँ, यदि भक्तों के बुलाने से भगवान् आते हों तो मैं उन्हें रोकूँगा नहीं। मैं तो सिर्फ जैन सिद्धान्त के अनुसार अपने विचार प्रकट कर रहा हूं कि जो शरीर से रहित हैं-आवागमन से या जन्ममरण से रहित हैं-अचल हैं-अनन्त सुखों में रमण करते हैं, संसार में आ नहीं सकते। महलों में रहने वाला टूटी-फूटी घास-फूस की झोंपड़ी में आना और रहना पसन्द करेगा कैसे ?

अविकार हैं

विकार से रहित हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ से संसारी जीवों में विकार पैदा होता है। परमात्मा में कषाय का ज़रासा सूक्ष्म-अंश भी नहीं है, इसलिए उनमें विकार की संभावना नहीं है।

अन्तर्यामी हैं

केवलज्ञानी हैं सर्वज्ञ हैं, इसलिए त्रिकाल त्रिलोक की कोई बात ऐसी नहीं है जो उनसे छिपी हो। वे सब कुछ जानते हैं-घट घट की बातें जानते हैं, इसलिए उन्हें अन्तर्यामी कहा गया है।

त्रिभुवन स्वामी हैं

त्रिलोक के नाथ हैं। सबसे बड़े हैं। अरिहंत को आचार्य, उपाध्याय, साधु, सुर, असुर, मनुष्य आदि सभी प्रणाम करते

हैं, क्यों कि वे इन सब से बड़े हैं, किन्तु सिद्ध-देव को अरिहंत भी वन्दन करते हैं। "णायाधम्मकहा" सूत्र में उल्लेख आता है कि दीक्षा लेते समय अरिहंत मल्लीनाथ ने "णमो सिद्धस्स" का उच्चारण करके सिद्धदेव को प्रणाम किया था-इससे सिद्ध होता है कि सिद्ध-देव सबसे बड़े होने के कारण सचमुच त्रिभुवन-स्वामी हैं।

शक्ति-भण्डार हैं

कवि कहता है कि वे अमित अर्थात् अपरिमित या अनन्त शक्ति के भण्डार हैं। उनकी शक्ति कभी नष्ट नहीं होती।

सिद्धदेव का सुख

सिद्धदेवों का सुख अनन्त है। इसलिए उनके सुख का पूरा वर्णन किया नहीं जा सकता। फिर भी शास्त्रकारों ने लिखा है:—

णवि अत्थि माणुसाणं, तं सोक्खं णवि य सव्वदेवाणं।
जं सिद्धाणं सोक्खं, अव्वाबाहं उवगयाणं॥
जं देवाणं सोक्खं, सव्वद्धा पिंडियं अणंतगुणं।
ण य पावइ मुत्तिसुहं, णंताहिं वग्गवग्गूहिं॥

—उववाईसूत्र

अर्थात् मनुष्यों को और सब देवों को वह सुख नहीं है, जो सिद्धों को है; क्योंकि सिद्धों का सुख स्थायी है। सब देवों का जितना सुख है, उसे इकट्ठा करके अनन्तगुना किया जाय और फिर उसे अनन्त बार वर्गाकार किया जाय तो भी मुक्ति-सुख की बराबरी में वह सुख खड़ा नहीं किया जा सकता!

हमारे जैसे क्षणिक सुख का अनुभव करने वाले सिद्ध देव के शाश्वत सुख का वर्णन करने में किस प्रकार असमर्थ हैं- यह एक दृष्टान्त के द्वारा सूत्रकारों ने समझाने का यत्न किया है:—

जह णाम कोई मिच्छो, णगरगुणे बहुविहे वियाणंतो।
ण चएइ परिकहेउं, उवमाए तहं असन्तीए॥
—उववाईसूत्र

एक नगरी में अजितशत्रु नामक राजा राज्य करते थे। एक दिन किसी घोड़े पर बैठ कर घूमने निकले तो रास्ता चूक जाने से एक जंगल में भटकते रहे और फिर थक कर एक पेड़ के नीचे बैठ गये, किन्तु प्यास बड़ी जोरों से लग रही थी। आस-पास कहीं पानी का स्थान दिखाई नहीं दे रहा था। वे परेशानी से इधर-उधर देख रहे थे कि इतने ही में सामने से एक भील आता हुआ दिखाई दिया।

निकट आते ही राजा ने पहला प्रश्न किया:—"भाई! मुझे प्यास लग रही है। यहाँ आस-पास कोई जल का स्थान हो तो बताओ!"

भील की बगल में ही ठंडे पानी की एक सुराही भरी थी, इसलिए उसने तुरन्त वह पानी पिला दिया। इससे राजा को काफी शान्ति का अनुभव हुआ। इसके बाद दोनों ने एक-दूसरे को अपना-अपना परिचय दिया।

राजा सोच ही रहा था कि किस प्रकार उपकार का बदला चुकाऊँ कि सामने ही दो घुड़सवार आकर खड़े हो गये। राजा को पहिचानते देर न लगी कि ये अपने ही सैनिक हैं, जो मुझे ढूँढते हुए यहाँ आ पहुंचे हैं। उसने सैनिकों में से एक का घोड़ा माँग लिया और उस पर भील को बिठा दिया; फिर खुद भी अपने घोड़े

करने में बड़े चतुर हैं। अपने क्षेत्र में सन्तों का चातुर्मास करवाने के लिए आप बड़े उत्सुक रहते हैं। आपका स्वभाव सरल है। हरसूद में जब चौमासा हुआ था, तब आप सन्तों की सेवा करने में तन-मन धन से कभी पीछे नहीं रहे। सत्संग के आप बड़े प्रेमी हैं, इसीलिए हर साल अपने कुटुम्ब के साथ यात्रा करके धर्मोपदेश सुनने का चौमासे के दिनों में लाभ उठाते रहते हैं।

आप बड़े तपस्वी हैं। बेले-तेले तो आपने बहुत-से कर डाले हैं, किन्तु मलकापुर में एक बार आपने ११ उपवास एक साथ करके अपनी शक्ति का परिचय दिया था। आपकी उम्र ६८ वर्ष की है।

यों तो आप हर साल भिन्न-भिन्न संस्थाओं को आर्थिक सहायता करते ही रहते हैं, किन्तु एक निश्चित रकम धर्म खाते दान करते रहने का आपने नियम ही ले लिया है। इससे आपकी दानवीरता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इस पुस्तक में आर्थिक सहायता भेजने के लिए, मैं आपका आभारी हूँ।

गली नं. २
धूलिया (प. खा.)

—कन्हैयालाल छाजेड़
मन्त्री—श्री अमोल जैन ज्ञानालय

श्रीमान् छोगमलजी डूंगरवाल, बीजापुर

—: विषय-सूची :—

अरिहन्त देव

एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे * पसीयंतु ॥५॥
कित्तिय वंदिय महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरुग्गबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दितु ॥६॥
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

—आवश्यक सूत्र

अर्थ—स्वर्गलोक, नरकलोक और मर्त्यलोक अर्थात् उर्ध्व-लोक, अधोलोक और तिर्च्छालोक, इन तीनों लोकों में धर्म का उद्योत करने वाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले और राग-द्वेष रूप अन्तरङ्ग शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले चौवीस केवलज्ञानी तीर्थङ्करों की मैं स्तुति करूँगा ॥ १ ॥

१ श्री ऋषभदेवजी, २ श्री अजितनाथजी, ३ श्री संभव-नाथजी, ४ श्रीअभिनन्दनजी, ५ श्री सुमतिनाथजी, ६ श्री पद्मप्रभजी, ७ श्री सुपार्श्वनाथजी, ८ श्री चन्द्रप्रभजी, ९ श्री सुविधिनाथजी, (श्री पुष्पदन्तजी), १० श्री शीतलनाथजी, ११ श्री श्रेयांसनाथजी, १२ श्री वासुपूज्यजी, १३ श्री विमलनाथजी, १४ श्री अनन्तनाथजी १५ श्री धर्मनाथजी १६ श्री शान्तिनाथजी १७ श्री कुंथुनाथजी,

* टिप्पणी—भगवान् राग द्वेष रहित हैं, इसलिए वे किसी पर न द्वेष करते हैं और न किसी पर प्रसन्न होते हैं और न किसी को कुछ देते ही हैं परन्तु उनका ध्यान करने से चित्त निर्मल होता है और चित्त शुद्धि द्वारा इच्छित फल की प्राप्ति होती है। जिस तरह की चिन्तामणि रत्न जड़ होते हुए भी उससे मनवांछित फल की प्राप्ति होती है ॥

१८ श्री अरनाथजी, १९ श्री मल्लिनाथजी, २० श्री मुनिसुव्रत-स्वामीजी, २१ श्री नमिनाथजी, २२ श्री अरिष्टनेमिजी, (नेमि-नाथजी) २३ श्री पार्श्वनाथजी, २४ श्री वर्द्धमानस्वामीजी (महावीरस्वामीजी)। मैं इन चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति करता हूँ और इनको नमस्कार करता हूँ॥ २-३-४॥

उपरोक्त प्रकार से मैंने जिनकी स्तुति की है, जो कर्म-मल से रहित हैं, जो जरा (बुढ़ापा) और मरण इन दोनों से मुक्त हैं और जो तीर्थ के प्रवर्तक हैं वे चौबीस जिनेश्वर मुझ पर प्रसन्न होवें॥ ५॥

नरेन्द्रों, नागेन्द्रों तथा देवेन्द्रों तक ने जिनका वाणी से कीर्तन किया है, काया से वंदन किया है और मन से भावपूजन किया है, जो सम्पूर्ण लोक में उत्तम हैं, और जो सिद्धिगति (मोक्ष) को प्राप्त हुए हैं वे भगवान् मुझको मोक्ष प्राप्ति के लिए आरोग्य बोधिलाभ तथा श्रेष्ठ समाधि प्रदान करें अर्थात् समकित की प्राप्ति करावें॥ ६॥

जो चन्द्रमाओं से भी अधिक निर्मल हैं, सूर्यों से भी विशेष प्रकाशमान हैं और स्वयम्भूरमण नामक महासमुद्र के समान गम्भीर हैं, ऐसे सिद्ध भगवान् मुझको सिद्धि (मोक्ष) देवें॥७॥

(७) अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रसपरित्याग, कायाक्लेश और प्रतिसंलीनता ये छह बाह्य तप हैं। प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग ये छह आभ्यन्तर तप हैं। इनका सेवन करने से वाले तपस्वी कहलाते हैं। ऐसे तपस्वियों की विनयभक्ति करने से, उनके गुणों की प्रशंसा करने से, आहारादि द्वारा उनका सत्कार करने से तथा उनका अवर्णवाद और आशातना को टालने से।

(८) ज्ञान में निरन्तर उपयोग रखने से।

(९) निरतिचार शुद्ध सम्यक्त्व को धारण करने से।

(१०) ज्ञान और ज्ञानी का यथायोग्य विनय करने से।

(११) भाव पूर्वक शुद्ध आवश्यक-प्रतिक्रमण आदि कर्तव्यों का पालन करने से।

(१२) निरतिचार शील और व्रत यानी मूलगुण और उत्तरगुणों का पालन करने से।

(१३) सदा संवेग भावना और शुभ ध्यान का सेवन करने से।

(१४) यथाशक्ति बाह्य तप और आभ्यन्तर तप करने से।

(१५) साधु महात्माओं को निर्दोष प्रासुक अशनादि का दान देने से।

(१६) आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान, नवदीक्षित, धार्मिक, कुल, गण, संघ इनकी भावभक्ति पूर्वक वैयावच्च करने से जीव तीर्थंकर नामकर्म बाँधता है। यह प्रत्येक वैयावच्च (वैयावृत्य) तेरह प्रकार का है—१ आहार लाकर देना, २ पानी

४-देवों के प्रकार

(१) कइविहा णं भंते ! देवा पण्णत्ता ? गोयमा ! पंचविहा देवा पण्णत्ता तंजहा—भवियदव्वदेवा, णरदेवा, धम्मदेवा, देवाहिदेवा, भावदेवा ।

(२) से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ भवियदव्वदेवा भविय दव्वदेवा ? गोयमा ! जे भविए पंचिंदिय तिरिक्खजोणिए वा मणुस्से वा देवेसु उववज्जित्तए । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ भवियदव्वदेवा भवियदव्वदेवा ।

(३) से केणट्ठेणं एवं वुच्चइ णरदेवा णरदेवा ? गोयमा जे इमे रायाणो चाउरंतचक्कवट्टी उप्पण्ण समत्तचक्क रयणप्पहाणा णवणिहिपइणो समिद्धकोसा वत्तीसं रायवर सहस्साणुयातमग्गा सागरवरमेहलाहिवइणो मणुस्सिंदा से तेणट्ठेणं जाव णरदेवा णरदेवा ।

(४) केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ धम्मदेवा धम्मदेवा गोयमा ! जे इमे अणगारा भगवंतो ईरियासमिया जा गुत्तबंभयारी । से तेणट्ठेणं जाव धम्मदेवा धम्मदेवा ।

के महल के चारों तरफ तीन वार प्रदक्षिणा देती हैं। फिर ईशान
कोण में जाकर भूमि से चार अङ्गुल ऊपर अपने विमानों को रख
देती हैं। तत्पश्चात् वे दिशाकुमारियाँ उन विमानों से नीचे उतर
कर अपने समस्त परिवार के साथ तीर्थङ्कर भगवान् और तीर्थङ्कर
भगवान् की माता के पास आकर तीन वार प्रदक्षिणा करके दोनों
हाथ जोड़ कर मस्तक से आवर्तन करती हुई अञ्जलिसहित इस
प्रकार कहती हैं कि हे रत्नकुक्षिधारिके! अर्थात् भगवान् रूप ...
को अपनी कुक्षि में धारण करने वाली और जगत्प्रदीपजन्मदायी
अर्थात् समस्त जगत् को प्रकाशित करने वाले प्रदीप के ...
भगवान् को जन्म देने वाली! क्योंकि समस्त संसार का ...
करने वाले, संसार के लिए चक्षुरूप, समस्त प्राणियों के हितकारी
मोक्ष मार्ग को बतलाने वाले, समस्त श्रोताजनों के हृदय में वस्तु
तत्त्व को प्रकाशित करने वाली वाणी का कथन करने वाले रा
द्वेष को जीतने वाले, विशिष्ट ज्ञान के धारक, धर्म चक्र को प्रवर्ता
वाले समस्त पदार्थों के ज्ञाता, समस्त प्राणियों को धर्म तत्त्व क
बोध देने वाले, सम्पूर्ण लोक के नाथ, ममत्वरहित, श्रेष्ठ कुल
उत्पन्न होने वाले एवं जाति से क्षत्रियकुल में जन्म लेने वाले लोको
त्तम पुरुष की आप माता हैं। अतः आप धन्य हैं, आप पुण्यवत
हैं, आप कृतार्थ हैं। हे देवानुप्रिये! हम अधोलोक में रहने वाल
आठ दिशाकुमारियाँ हैं। हम तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्स
करेंगी। अतः आप डरें नहीं। इस प्रकार कह कर वे ईशान को
में जाकर वैक्रिय समुद्घात करती हैं यावत् रत्नों के सूक्ष्म पुद्गल
को ग्रहण करके संख्यात योजन का दण्ड बनाती हैं और संवर्त
वायु की विकुर्वणा करके मृदु, ऊपर को न जाने वाली किन्
पृथ्वी तल का स्पर्श करने वाली, सब ऋतुओं के फूलों की सुगन्
से युक्त, तिर्छी चलने वाली वायु से तीर्थङ्कर भगवान् के जन

भवन के चारों तरफ एक योजन तक जमीन को साफ करती हैं। उसमें जो कुछ तृण पत्र, काष्ठ कचरा, अशुचि तथा सड़े हुए और दुर्गन्धि युक्त पदार्थ होते हैं उन्हें ले जाकर एकान्त स्थान में डाल देती हैं। फिर वे तीर्थंकर भगवान् और उनकी माता के पास आती हैं। और उनके पास उचित स्थान पर मधुर स्वर में गाती हुई खड़ी रहती हैं। ६॥

(दिशाकुमारियों का आगमन)

तेणं कालेणं तेणं समएणं उड्ढलोगवत्थव्वाओ अट्ठ-दिसाकुमारी-महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं, सएहिं सएहिं भवणेहिं, सएहिं सएहिं पासायवडिंसएहिं पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, एवं तं चेव पुव्ववण्णियं जाव विहरंति तंजहा-मेहंकरा मेहवई, सुमेहा मेहमालिणी। सुवच्छा वच्छमित्ता य वारिसेणा बलाहगा॥

तए णं तासिं उड्ढलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारी-महत्तरियाणं पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलंति। एवं तं चेव पुव्ववण्णियं भाणियव्वं जाव अम्हे णं देवाणुप्पिए! उड्ढलोग-वत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी-महत्तरियाओ भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-महिमं करिस्सामो तेणं तुब्भे ण भाइयव्वं त्तिकट्टु उत्तरपुरच्छिमं दिसिभागं अवक्कमंति अवक्कमित्ता जाव अब्भवद्दलए विउव्वंति विउव्वित्ता जाव तं निहयरयं णट्ठरयं भट्ठरयं पसंतरयं उवसंतरयं

करेंति, करित्ता खिप्पामेव पच्चुवसमंति, एवं पुप्फवद्दलंसि पुप्फवासं वासंति वासित्ता जाव कालागुरुपवर जाव सुर-वराभिगमणजोग्गं करेंति, करित्ता जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता जाव आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥२॥

अर्थ—उस काल उस समय में ऊर्ध्वलोक में रहने वाली आठ दिशाकुमारियाँ पूर्व वर्णन के अनुसार दिव्य भोग भोगती हुई अपने-अपने महलों में रहती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ मेघंकरा, २ मेघवती, ३ सुमेघा, ४ मेघमालिनी, ५ सुवत्सा ६ वत्समित्रा, ७ वारिषेणा, और ८ बलाहका।

जब तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म होता है, तब इन दिशाकुमारियों के आसन कम्पित होते हैं। फिर वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जानती हैं। इत्यादि पूर्व वर्णन सारा यहाँ भी कर देना चाहिए। फिर वे तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आकर कहती हैं कि हे देवानुप्रिये! ऊर्ध्वलोक में रहने वाली हम आठ दिशाकुमारियाँ तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करेंगी। इससे आप डरें नहीं। ऐसा कह कर वे ईशान कोण में जाकर मेघ की विकुर्वणा करती हैं; फिर उनसे पानी बरसा कर तीर्थङ्कर भगवान् के जन्मस्थान से एक योजन तक समस्त रज को शान्त कर देती हैं, फिर वे पाँच जाति के फूलों की वृष्टि करती हैं। तत्पश्चात् कालागुरु, कुंदरुक्क आदि धूपों से एक योजन तक की भूमि को अत्यन्त सुगन्धित गन्धवट्टी के समान बना देती हैं यावत् उस भूमि को देवलोक के इन्द्र और देवों के आने योग्य बना

देती हैं। फिर तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आकर मधुर स्वर से गाती हुई खड़ी रहती हैं ॥२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं पुरच्छिमरुयगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी-महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं तहेव जाव विहरंति, तंजहा—

णंदुत्तरा य णंदा य, आणंदा णंदिवद्धणा ।
विजया य वेजयंती, जयंती अपराजिया ॥

सेसं तं चेव जाव तुब्भेहिं ण भीइयव्वं त्तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य पुरच्छिमेणं आयंसहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥३॥

अर्थ—पूर्व रुचक कूट पर रहने वाली आठ दिशाकुमारी देवियाँ अपने अपने महलों में दिव्य भोग भोगती हुई आनन्द पूर्वक रहती हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—१ नन्दुत्तरा, २ नन्दा, ३ आनन्दा, ४ नन्दिवर्द्धना, ५ विजया, ६ वैजयन्ती, ७ जयन्ती और ८ अपराजिता।

जब तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म होता है, तब इनके आसन चलित होते हैं। फिर वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर अपनी सर्व ऋद्धि और द्युति के साथ एवं अपने समस्त परिवार के साथ तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आकर इस प्रकार कहती हैं—हे देवानुप्रिये ! हम पूर्व के रुचक कूट पर रहने वाली आठ दिशाकुमारी देवियाँ हैं। हम तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करेंगी। इससे आप डरें नहीं। ऐसा

इलादेवी सुरादेवी, पुहवी पउमावई ।
एगणासा णवमिया, भद्दा सीया य अट्ठमा ॥

तहेव जाव तुब्भेहिं, ण भीइयव्वं त्तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य पच्चत्थिमेणं तालियंट-हत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥५॥

अर्थ—पश्चिम दिशा के रुचक पर्वत पर रहने वाली आठ दिशाकुमारी देवियाँ अपने अपने महलों में दिव्य भोग भोगती हुई रहती हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—१ इलादेवी, २ सुरादेवी, ३ पृथ्वीदेवी, ४ पद्मावती, ५ एकनासा, ६ नवमिका, ७ भद्रा और ८ सीता ।

जब तीर्थङ्कर भगवान का जन्म होता है तब इनका आसन चलित होता है । तब वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान का जन्म हुआ जान कर उनका जन्म महोत्सव करने के लिए तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आती हैं और उन्हें वन्दना नमस्कार करके हाथ में पंखा लेकर यथाक्रम मन्द और उच्च स्वर से गाती हुई पश्चिम की तरफ खड़ी रहती हैं ॥५॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं उत्तरिल्लरुयगवत्थव्वाओ जाव विहरंति, तंजहा—

अलंबुसा मिस्सकेसी, पुंडरीया य वारुणी ।
हासा सव्वप्पभा चेव, सिरी हिरी चेव उत्तरओ ॥

तहेव जाव वंदित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयर-

मायाए य उत्तरेणं चामरहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥६॥

अर्थ—उत्तरदिशा के रुचक पर्वत पर रहने वाली आठ दिशाकुमारी देवियाँ अपने-अपने महलों में दिव्य भोग भोगती हुई रहती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ अलंबुसा, २ मिश्रकेशी, ३ पुण्डरीका, ४ वारुणी, ५ हासा, ६ सर्वप्रभा, ७ श्री और ८ ही।

तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म समय में अपने अपने आसनों के कम्पित होने पर वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर उनका जन्म महोत्सव करने के लिए तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आती हैं और उन्हें वन्दना नमस्कार करके हाथ में चामर लेकर यथाक्रम से गीत गाती हुई उत्तर की तरफ खड़ी रहती हैं ॥६॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं विदिसरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी-महत्तरियाओ जाव विहरंति। तंजहा—

चित्ता य चित्तकणगा, सतेरा य सोदामिणी।

तहेव जाव तुब्भेहिं ण भीइयव्वं त्तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य चउसु विदिसासु दीविया-हत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥७

अर्थ—उस काल और उसी समय में १ चित्रा, २ चित्र-कनका, ३ शतेरा और ४ सौदामिनी। ये चार महत्तरिका विदिशा-कुमारी देवियां (विद्युत्कुमारी देवियाँ) रुचक पर्वत के ऊपर ईशानकोण, आग्नेय कोण, नैऋत्य कोण और वायव्य कोण

न चार विदिशाओं में रहती हैं। अपने अपने आसन कम्पित होने पर वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जानकर उनका जन्म महोत्सव करने के लिए तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आती हैं और उन्हें वन्दना नमस्कार करके हाथ में दीपक लेकर यथाक्रम मन्द और उच्चस्वर से गाती हुई चारों विदिशाओं में खड़ी हो जाती हैं ॥७॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं मज्झिमरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं तहेव जाव विहरंति। तंजहा—रूया, रूयासिया, सुरूया, रूयगावई। तहेव जाव तुब्भेहिं ण भाइयव्वं त्तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स चउरंगुलवज्जं णाभिणालं कप्पंति, कप्पित्ता वियरगं खणंति, खणित्ता वियरगे णाभिणालं णिहणंति, णिहणित्ता रयणाण य वइराण य पूरेंति, पूरित्ता हरियालियाए पेढं बंधंति, बंधित्ता तिदिसिं तओ कयलीहरए विउव्वंति। तए णं तेसिं कयलीहरगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ चउस्सालए विउव्वंति। तए णं तेसिं चउस्सालगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ सीहासणे विउव्वंति। तेसिं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते। सव्वो वण्णओ भाणियव्वो।

तए णं ताओ मज्झिमरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरियाओ जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं करयल-

संपुडेणं गिण्हंति, तित्थयर मायरं च बाहाहिं गिण्हं
गिण्हित्ता जेणेव दाहिणिल्ले कयलीहरए जेणे
चाउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छंति
उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहास
णिसीयावेंति, णिसीयावित्ता सयपागसहस्सपागेहिं तिल्ले
अब्भंगेंति, अब्भंगित्ता सुरभिणा गंधवट्टएणं उव्वट्टें
उव्वट्टित्ता भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च
बाहाहिं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव पुरच्छिमिल्ले कयली-
हरए जेणेव चाउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छंति
उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे
णिसीयावेंति, णिसीयावित्ता तिहिं उदएहिं मज्जावेंति
तंजहा—गंधोदएणं पुप्फोदएणं सुद्धोदएणं। मज्जावित्त
सव्वालंकारविभूसियं करेंति, करित्ता भगवं तित्थय
करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हंति, गिण्हित्त
जेणेव उत्तरिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउस्सालए जेणे
सीहासणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भगवं तित्थ
यरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति, णिसीया
वित्ता आभिओगे देवे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—
खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चुल्लहिमवंताओ वासहर-
पव्वयाओ गोसीसचंदणकट्ठाइं साहरह। तएणं ते आभि-
ओगा देवा ताहिं मज्झिमरुयगवत्थव्वाहिं चउहिं दिसा-

कुमारी महत्तरियाहिं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव विणएणं वयणं पडिच्छंति, पडिच्छित्ता खिप्पामेव चुल्लहिमवंताओ वासहरपव्वयाओ सरसाइं गोसीसचंदण-कट्ठाइं साहरंति।

तएणं ताओ मज्झिमरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसा-कुमारी महत्तरियाओ सरगं करेंति, करित्ता अरणिं घडेंति, अरणिं घडित्ता, सरएणं अरणिं महिंति, महित्ता अग्गिं पाडेंति, पाडित्ता अग्गिं संधुक्खंति, संधुक्खित्ता गोसीस-चंदणकट्ठे पक्खिवंति, पक्खिवित्ता अग्गिं उज्जालेंति, उज्जालित्ता समिहाकट्ठाइं पक्खिवंति, पक्खिवित्ता अग्गि-होमं करेंति, करित्ता भूइकम्मं करेंति, करित्ता रक्खापोट्ट-लियं बंधंति, बंधित्ता णाणामणिरयणभत्तिचित्ते दुवे पाहाणवट्टगे गहाय भगवओ तित्थयरस्स कण्णमूलंमि टिट्टियाविंति-भवउ भगवं पव्वयाउए, भवउ भगवं पव्व-याउए। तएणं ताओ मज्झिमरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरियाओ भयवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हंति गिण्हित्ता जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता तित्थयरमायरं सयणिज्जंसि णिसीयावेंति, णिसीयावित्ता भयवं तित्थयरं माउए पासे ठवेंति, ठवित्ता आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥८॥

अर्थ—रूपा, रूपासिका, सुरूपा, और रूपकावती, मध्यम रुचक पर्वत पर रहने वाली चार दिशाकुमारियाँ भगवान् के जन्म समय में अपने अपने आसनों के कम्पित पर अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान उनका जन्म महोत्सव करने के लिए तीर्थङ्कर भगवान् की माता पास आती हैं और कहती हैं कि 'हम तीर्थङ्कर भगवान् का महोत्सव करेंगी, इससे आप डरें नहीं।' ऐसा कह कर ती भगवान के नाभिनाल का चार अङ्गुल छोड़ कर छेदन करती फिर उसे खड्डे में गाड़ती हैं और रत्नों से तथा वज्ररत्नों से खड्डे को भर देती हैं तथा उस पर हरितालिका की पीठ बाँध दे हैं अर्थात् घास उगा देती हैं। फिर पूर्व, उत्तर और दक्षिण दि में तीन कदलीगृह (केले के घर) बनाती हैं। और उनके में तीन चौशाल भवन बना कर उनके बीच में तीन सिंहा बनाती हैं। सिंहासन का वर्णन जैसा रायप्रश्नीय सूत्र में व गया है वैसा यहाँ पर भी कह देना चाहिए।

तत्पश्चात वे दिशाकुमारी देवियाँ तीर्थङ्कर भगवान माता के पास आती हैं तीर्थङ्कर भगवान् को हथेली में रख तथा तीर्थङ्कर भगवान् की माता को भुजाओं से पकड़ कर दक्षि दिशा के कदलीगृह के चौशाल भवन में आती हैं और सिंहासन बैठाती हैं। फिर शतपाक और सहस्रपाक तैलों से उनके श का मर्दन करती हैं फिर महासुगन्धित गन्धद्रव्यों के उबटन उनके उबटन करती हैं। वहाँ से उन दोनों को पूर्व दिशा के लीगृह के चौशाल भवन में पूर्ववत लाकर सिंहासन पर बैठाती और गन्धोदक, पुष्पोदक एवं शुद्धोदक इन तीन प्रकार के पानी उन्हें स्नान कराती हैं। तत्पश्चात उन दोनों को उत्तर दिशा कदलीगृह के चौशाल भवन में पूर्ववत् लाकर सिंहासन पर बैठा

स्नान कराती हैं। फिर वे दिशाकुमारी देवियाँ अपने आभियोगिक (नौकर तुल्य) देवों को बुला कर कहती हैं कि हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत पर जाकर वहाँ से श्रेष्ठ गोशीर्ष चन्दन काष्ठ लाओ। तब वे आभियोगिक देव उनकी आज्ञा को प्रसन्नता से स्वीकार करते हैं और शीघ्र ही चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत पर जाकर गोशीर्ष चन्दन काष्ठ लाते हैं। फिर वे देवियाँ अरणि की लकड़ी से अग्नि पैदा करके उसमें गोशीर्ष चन्दन काष्ठ डाल कर अग्नि होम करती हैं। उन चन्दनकाष्ठों की भस्म बना कर रक्षा पोट्टलिका अर्थात् अनिष्टों से रक्षा करने वाली पोटली बाँधती हैं। तत्पश्चात् अनेक मणिरत्नों की रचना से विचित्र गोल पाषाण लेकर तीर्थङ्कर भगवान के कान के पास में उन्हें बजाती हैं यानी "टां-टां" शब्द करवाती हैं और आशीर्वाद देती हैं कि तीर्थङ्कर भगवान् पर्वत के समान दीर्घ आयु वाले होवें। फिर वे देवियाँ तीर्थङ्कर भगवान् को हथेली पर रख कर और उनकी माता को भुजाओं से ग्रहण करके तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन में लाती हैं। वहाँ तीर्थङ्कर भगवान् की माता को उनके बिछौने पर सुला कर तीर्थङ्कर भगवान् को उनके पास सुला देती हैं फिर वे मधुर गीत गाती हुई खड़ी रहती हैं ॥८॥

(देवेन्द्र द्वारा वन्दन)

तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे सयक्कऊ सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहि-णड्ढलोगाहिवई बत्तीसविमाणावाससयसहस्साहिवई एरावण-वाहणे सुरिंदे अरयंबरवत्थधरे आलइयमालमउडे नवहेम-

चारुचित्तचंचलकुंडलविलिहिज्जमाणगंडे भासुरबोंदी पलंब-वणमाले महिड्डीए महज्जुईए महब्बले महायसे महाणुभागे महासोक्खे सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कंसि सीहासणंसि से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसाहस्सीणं चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं तेत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेव-साहस्सीणं अण्णेसिं य बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं वेमाणियाणं देवाणं य देवीणं य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहयणट्टगीयवाइयतंतीतलताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडु-पडहवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं चलइ। तए णं से सक्के जाव आसणं चलियं पासइ पासित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ, आभोइत्ता हट्ठतुट्ठचित्ते आणंदिए पीइमणे परम-सोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए धाराहयकयंब-कुसुम-चंचुमालइय ऊसवियरोमकूवे वियसिय-वरकमल-णयणवयणे पचलियवरकडग-तुडिय-केऊर-मउडे कुंडलहार-विरायंतवच्छे पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं

तुरियं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता
पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वेरुलियवरिट्ठरिट्ठ-
अंजणनिउणोविय मिसिमिसंत मणिरयणमंडियाओ पाउ-
याओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ,
करित्ता अंजलिमउलियग्गहत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठ-
पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ,
अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणीयलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो
मुद्धाणं धरणीयलंसि निवेसेइ, निवेसित्ता ईसिं पच्चुण्ण-
मइ, पच्चुण्णमित्ता कडगतुडियथंभियाओ भुयाओ साह-
रइ, साहरित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंज-
लिं कट्टु एवं वयासी—नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं,
आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं पुरिस-
सीहाणं पुरिसवरपुंडरियाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्त-
माणं लोगनाहाणं लोगहियाणं, लोगपईवाणं, लोगपज्जोय-
गराणं, अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं,
जीवदयाणं, बोहिदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्म-
नायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं, दीवो-
ताणं सरणं गई पइट्ठा अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं वियट्ट-
छउमाणं, जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं
बोहियाणं मुत्ताणं मोयगाणं, सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिव-
मयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्ति सिद्धिगइ

णामधेयं ठाणं संपत्ताणं णमो जिणाणं जिअभयाणं, णमो-त्थुणं भगवओ तित्थयरस्स आइगरस्स जाव संपाविउ-कामस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं तिकट्टु वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमं-सित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ॥६॥

अथ—तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म के समय में जब छप्पन दिशाकुमारी देवियाँ अपना अपना कार्य कर चुकती हैं, तब देवों के राजा हाथ में वज्र धारण करने वाले, पुर नामक दैत्य का विना करने वाले, कार्तिक सेठ के भव में सौ बार श्रावक की प्रतिमा का आराधन करने वाले, अपने पाँच सौ मन्त्रियों की सलाह लेकर कार्य करने से हजार नेत्रों वाले, पाक नामक दैत्य को शिक्षा देने वाले, मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा के अर्द्ध लोक के अधिपति, सौधर्म देवलोक सम्बन्धी बत्तीस लाख विमानों के अधिपति ऐरावत हाथी की सवारी करने वाले, आकाश के समान स्वच्छ निर्मल वस्त्रों के धारण करने वाले, गले में माला और मस्तक पर मुकुट धारण करने वाले, नवीन एवं मनोहर चंचल कुँडलों को धारण करने वाले प्रकाशमान शरीर वाले, लटकती हुई माला को धारण करने वाले, महाऋद्धिमान, महाद्युतिमान, महाबलवान्, महायशस्वी, महा-नुभाव, महासुखी शक्र नाम के देवेन्द्र सौधर्मावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में अपने सिंहासन पर विराजमान हैं। वे वहाँ पर बत्तीस लाख विमान, चौरासी हजार सामानिक देव, तेतीस त्राय-स्त्रिंशक देव, चार लोक पाल, परिवार सहित आठ अग्रमहिषियाँ, तीन परिषदा, सात अनीक (सेना), सात अनीकाधिपति, तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देव और दूसरे बहुत से सौधर्म

लोक में रहने वाले वैमानिक देव और देवियों का अधिपतिपना, स्वामीपना, अग्रगामीपना, और सेनापतिपना करते हुए अनेक देवियों सहित गीत और नृत्यपूर्वक भोग भोगते हुए रहते हैं।

जब तीर्थंकर भगवान् का जन्म होता है तब इनका आसन चलायमान होता है। अपने आसन को चलित देखकर ये अवधिज्ञान का प्रयोग करते हैं। फिर अवधिज्ञान के द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जानकर ये बड़े प्रसन्न होते हैं, आनन्दित होते हैं। हर्षवश उनका हृदय कमल विकसित हो जाता है, जलधारा के पड़ने से कदम्ब वृक्ष के फूल के समान उनकी समस्त रोमराजि (रोंगटे) विकसित हो जाती है, उनके नेत्र और मुख श्रेष्ठ कमल के समान विकसायमान हो जाते हैं यावत् उन्हें अपार हर्ष होता है। तब शक्रेन्द्र अपने सिंहासन से नीचे उतर कर विविध प्रकार की मणियों से जड़ित अपनी पादुका (खड़ाऊ) को खोल देता है और मुख पर वस्त्र का उत्तरासंग करके, मस्तक पर अञ्जलि रख कर और तीर्थंकर भगवान् की तरफ मुँह करके सात-आठ पैर उनके सामने जाते हैं। फिर बाएँ गोडे को खड़ा करके और दाहिने गोडे को जमीन पर टेक कर शरीर को थोड़ा संकुचित करके एवं भुजाओं को थोड़ी-सी ऊँची उठाकर तीन बार भूमि पर मस्तक लगाते हैं। दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर आवर्तन करके इस प्रकार बोलते हैं—"श्री अरिहन्त भगवान् को नमस्कार हो।" वे अरिहन्त भगवान् कैसे हैं? धर्म की आदि (शुरुआत) करने वाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले, स्वयमेव बोध को प्राप्त करने वाले, पुरुषों में उत्तम, पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में प्रधान पुण्डरीक कमल के समान, पुरुषों में प्रधान गन्धहस्ती के समान, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक के हितकारी, लोक में दीपक के समान, लोक में धर्म का उद्योत करने वाले, अभयदान के दाता,

ज्ञान रूप चक्षु के दाता, मोक्षमार्ग के दाता, भयभीत प्राणियों को शरण देने वाले, संयम रूप जीवितव्य के देने वाले, बोधबीज रूप समकित के देने वाले, धर्म के देने वाले, धर्मोपदेश के देने वाले, धर्म के नायक, धर्म रूप रथ के सारथि, धर्म में प्रधान, चारगति का अन्त करने में चक्रवर्ती के समान, शरणागत को आधारभूत, केवल ज्ञान केवल दर्शन के धारण करने वाले, छद्मस्थपने से निवृत्त, स्वयं रागद्वेष को जीतने वाले, दूसरों को रागद्वेष जिताने वाले, स्वयं संसार समुद्र को तिरने वाले, दूसरों को संसार समुद्र से तिराने वाले, स्वयं तत्त्वज्ञान को प्राप्त करने वाले, दूसरों को तत्त्वज्ञान प्राप्त कराने वाले, स्वयं आठ कर्मों से मुक्त होने वाले, दूसरों को आठ कर्मों से मुक्त कराने वाले. सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, कल्याणकारी, शाश्वत, रोगरहित, अनन्त, अक्षय, बाधा पीड़ा रहित, पुनरागमन रहित, सिद्धिगति को प्राप्त करने वाले, संसार के सातों भयों को जीतने वाले, रागद्वेष के जीतने वाले, जिन भगवान् को नमस्कार हो। और धर्म की आदि करने वाले यावत् मोक्ष को प्राप्त करने की इच्छा वाले वर्तमान तीर्थङ्कर भगवान् को नमस्कार हो।

फिर शक्रेन्द्र कहते हैं कि इस समय जम्बूद्वीप में रहे हुए तीर्थङ्कर भगवान् को मैं यहां से नमस्कार करता हूं। वहां रहे हुए तीर्थङ्कर भगवान् मुझे देखें और मेरी वन्दना स्वीकार करें। ऐसा कह कर शक्रेन्द्र वन्दना नमस्कार करते हैं वन्दना नमस्कार करके पूर्व की तरफ मुँह करके शक्रेन्द्र अपने आसन पर बैठ जाते हैं॥६॥

(इन्द्र की घोषणा)

तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अयमेयारूवे जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था—उप्पण्णे खलु भो जंबुद्दीवे दीवे भगवं तित्थयरे, तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं तित्थयराणं जम्मणमहिमं करित्तए। तं गच्छामि णं अहं पि भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करेमि त्तिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता हरिणेगमेसिं पायत्ताणीयाहिवइं देवं सद्दावेंति सद्दावित्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सभाए सुहम्माए मेघोघरसियं गंभीरमहुरयरसद्दं जोयणपरिमंडलं सुघोसं सुसरं तिक्खुत्तो उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वयाहि—आणवेइ णं भो सक्के देविंदे देवराया, गच्छइ णं भो सक्के देविंदे देवराया जंबुद्दीवे दीवे भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करित्तए, तं तुब्भे वि णं देवाणुप्पिया !, सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वणाडएहिं सव्वोरोहेहिं सव्वपुप्फ-गंधमल्लालंकारविभूसाए सव्व-दिव्व-तुडियसद्द-सण्णिणाएणं महया इड्ढीए जाव रवेणं णियगपरिवालसंपरिवुडा सयाइं सयाइं जाण विमाणवाहणाइं दुरूढा समाणा

अकाल परिहीणं चेव सक्कस्स जाव पाउब्भवह ॥१०॥

अर्थ—उस समय यानी अपने सिंहासन पर बैठने पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराजा के मन में ऐसा विचार उत्पन्न होत है कि जम्बूद्वीप में तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ है। तीर्थङ्क भगवान् का जन्म महोत्सव करना यह भूत भविष्य और वर्तमान काल के शक्र देवेन्द्र देवराजाओं का जीताचार है यानी यह उनकी परम्परागत रीति है। अतः मैं भी जम्बूद्वीप में जाऊँ और तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करूँ। ऐसा विचार करके शक्रेन्द्र पदाति सेना के स्वामी हरिणगमेषी देव को बुलाते हैं और बुला कर ऐसा कहते हैं कि हे देवानुप्रिय ! सुधर्मासभा में जाकर मेघ की गर्जना के समान गम्भीर और अतिमधुर शब्द करने वाले तथा जिसकी आवाज एक योजन तक फैलती है उस सुस्वर वाले सुघोष घण्टा को तीन बार बजा कर इस तरह उद्घोषणा करो कि हे देवानुप्रियो ! शक्र देवेन्द्र देवराजा आज्ञा देते हैं कि वे स्वयं तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करने के लिए जम्बूद्वीप में जाते हैं। अतः तुम भी अपनी सब ऋद्धि, द्युति, कान्ति और विभूति सहित फूलमाला, गन्ध, अलङ्कार से विभूषित होकर सब नाटक और वादित्रों के शब्दों के साथ अपने अपने परिवार सहित यान विमानों पर बैठ कर शीघ्र ही शक्रेन्द्र के पास उपस्थित होवो ॥१०।

तए णं से हरिणेगमेसी देवे पाइत्ताणाहिवई सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव एवं देवो त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरायस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्ख-

मित्ता जेणेव सभाए सुहम्माए मेघोघरसियगंभीरमहुरयर-सद्दा जोयणपरिमंडला सुघोसा घंटा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मेघोघरसियगंभीरमहुरयरसद्दं जोयणपरिमंडलं सुघोसं घंटं तिक्खुत्तो उल्लालेइ। तए णं तीसे मेघोघ-रसियगंभीरमहुरयरसद्दाए जोयण परिमंडलाए सुघोसाए घंटाए तिक्खुत्तो उल्लालियाए समाणीए सोहम्मे कप्पे अण्णेहिं एगूणेहिं बत्तीसविमाणावाससयसहस्सेहिं अण्णाइं एगूणाइं बत्तीसघंटासयसहस्साइं जमगसमगं कणकणारावं काउं पयत्ताइं हुत्था। तए णं सोहम्मे कप्पे पासायविमाण-णिक्खुडावडियसद्दसमुट्ठिय घंटा पडिसुया सयसहस्ससंकुले जाए यावि होत्था ॥११॥

अर्थ—इसके बाद पदाति (पैदल) सेना का स्वामी वह हरिणगमेषी देव शक्रेन्द्र की उपरोक्त आज्ञा को सुन कर हृष्टतुष्ट होता है और विनयपूर्वक उस आज्ञा को स्वीकार करता है। तत्पश्चात् वह हरिणगमेषी देव सुधर्मा सभा में उस घंटा के पास आकर मेघ की गर्जना के समान गम्भीर और अति मधुर शब्द करने वाली तथा एक योजन तक शब्द विस्तृत करने वाली उस सुघोषा घण्टा को तीन बार बजाता है। उसके बजाने से सौधर्म देवलोक के दूसरे एक कम बत्तीस लाख विमानों में रही हुई एक कम बत्तीस लाख घण्टा एक साथ शब्द करती हैं। वह शब्द सौधर्म देवलोक के प्रासाद, विमान और गुफाओं में जाकर टकराता है जिससे उठी हुई प्रतिध्वनि के लाखों शब्दों से सम्पूर्ण सौधर्म देवलोक व्याप्त हो जाता है ॥११॥

तए णं तेसिं सोहम्मकप्पवासीणं बहूणं वेमाणियाणं देवाणं य देवीणं य एगंतरइपसत्तणिच्चपमत्तविसयसुहमुच्छियाणं सुसरघंटारसियविउलबोलतुरियचवलपडिबोहणे कए समाणे घोसणकोऊहलदिण्णकण्णएगग्गचित्तउवउत्तमाणसाणं से पायत्ताणाहिवई देवे तंसि घंटारवंसि णिसंतपडिसंतंसि समाणंसि तत्थ तत्थ तहिं तहिं देसे महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वयासी—हंत ! सुणंतु भवंतो बहवे सोहम्मकप्पवासी वेमाणिया देवा य देवीओ य सोहम्मकप्पवइणो इणमो वयणं हियसुहत्थं, आणवेइ णं भो सक्के तं चेव जाव पाउब्भवह ॥ १२ ॥

अर्थ—सौधर्म देवलोक में रहने वाले बहुत से देव और देवियाँ रति क्रीड़ा में अत्यन्त आसक्त होते हैं और विषय सुख में अत्यन्त मूर्च्छित होते हैं। उस मधुर शब्द करने वाली सुघोषा घण्टा की आवाज से सावधान बन कर उद्घोषणा को सुनने के लिए अपने कान उधर लगाते हैं और चित्त को एकाग्र करके उधर ध्यान लगाते हैं। तब उस सुघोषा घण्टा की आवाज शान्त हो जाने पर पदाति सेना का अधिपति वह हरिणगमेषी देव बड़े जोर जोर से उद्घोषणा करता हुआ इस प्रकार कहता है कि—हे सौधर्म देवलोक में रहने वाले वैमानिक देव और देवियो ! आप सब लोग सौधर्म देवलोक के स्वामी शक्रेन्द्र के इन हितकारी एवं कल्याणकारी और सुखकारी वचनों को सुनो। शक्रेन्द्र यह आज्ञा देते हैं कि—मैं तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करने के लिए

तस्स णं भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए पिच्छाघरमंडवे अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे वण्णओ जाव पडिरूवे । तस्स उल्लोए पउमलयभत्तिचित्ते जाव सव्वतवणिज्जमए जाव पडिरूवे । तस्स णं मंडवस्स बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागंसि महं एगा मणिपेढिया अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमई वण्णओ । तीए उवरिं महं एगे विजयदूसए सव्वरयणामए वण्णओ । तस्स बहुमज्झदेसभाए एगे वइरामए अंकुसे । एत्थ णं महं एगे कुंभिक्के मुत्तादामे । से णं अण्णेहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्तेहिं चउहिं अद्धकुंभिक्केहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमंडिया णाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोभिय समुदया ईसिं अण्णमण्णमसंसत्ता पुव्वाइएहिं वाएहिं मं एइज्जमाणा एइज्जमाणा जाव णिव्वुइकरेणं सद्देणं ते पए आपूरेमाणा आपूरेमाणा जाव अईव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति ।

तस्स णं सीहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरच्छिमेणं एत्थ णं सक्कस्स चउरासीए सामाणियसाहस्सीए चउरासीए भद्दासणसाहस्सीओ पुरच्छिमेणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं एवं दाहिणपुरच्छिमेणं अब्भिंतरपरिसाए दुवालसण्हं देवसाहस्सीणं दाहिणेणं मज्झिमाए चउदसण्हं देव

परिणाम वाली अर्द्धकुम्भ के समान चार मुक्तामालाएँ होता हैं। वे मालाएँ सुवर्ण निर्मित प्राकार से वेष्टित और मणियों तथा रत्नों के विचित्र प्रकार के हार, अर्द्धहारों से सुशोभित होती हैं। पूर्वादि दिशाओं के पवन से मन्द मन्द प्रेरित होती हुई उन मालाओं से चित्त को आनन्दित करने वाला और कानों को प्रिय लगने वाला मधुर शब्द निकलता है।

उस सिंहासन के वायव्यकोण में, उत्तर दिशा में और ईशान कोण में शक्रेन्द्र के चौरासी हजार सामानिक देवों के चौरासी हजार भद्रासन होते हैं। पूर्व दिशा में आठ अग्रमहिषियों के आठ भद्रासन होते हैं। इसी प्रकार आग्नेय कोण में आभ्यन्तर परिषद्‌ा के बारह हजार देवों के, दक्षिण दिशा में मध्यम परिषद्‌ा के चौदह हजार देवों के. नैऋत्य कोण में बाह्य परिषद्‌ा के सोलह हजार देवों के और पश्चिम दिशा में सात अनीकाधिपति देवों के सात भद्रासन होते हैं। उनके चारों तरफ चारों दिशाओं में तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों के तीन लाख छत्तीस हजार भद्रासन होते हैं। यान विमान का वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र में सूर्याभ देव प्रकरण में बहुत विस्तार के साथ किया गया है उसी के अनुसार यहाँ भी सारा वर्णन जान लेना चाहिये। इस प्रकार दिव्य यान विमान की विकुर्वणा करके वह पालक देव शक्रेन्द्र को उनकी आज्ञा वापिस सौंपता है अर्थात् वह इस बात की सूचना शक्रेन्द्र को देता है कि मैंने आपकी आज्ञा के अनुसार विक्रिया द्वारा दिव्य यान विमान बना कर तय्यार कर दिया है ॥१६॥

(देवराज का आगमन)

तए णं से सक्के देविंदे देवराया हट्ठतुट्ठहियए दिव्वं जिणिंदाभिगमणजुग्गं सव्वालंकारविभूसियं उत्तरवेउव्वियरूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं णट्टाणीएणं गंधव्वाणीएण य सद्धिं तं विमाणं अणुप्पयाहिणी करेमाणे पुव्विल्लेणं तिसोवाणेणं दुरूहइ, दुरूहित्ता जाव सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे, एवं चेव सामाणिया वि उत्तरेणं तिसोवाणेणं दुरूहित्ता पत्तेयं पत्तेयं पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति, अवसेसा य देवा देवीओ य दाहिणिल्लेणं तिसोवाणेणं दुरूहित्ता तहेव णिसीयंति ॥ १७ ॥

अर्थ—पालक देव द्वारा दिव्य यान विमान के तैयार हो जाने की सूचना पाकर शक्रेन्द्र का हृदय बहुत प्रसन्न होता है। तत्पश्चात् शक्रेन्द्र उत्तर वैक्रिय द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् के सम्मुख जाने योग्य, सब अलङ्कारों से विभूषित उत्तर वैक्रिय रूप बनाते हैं। फिर अपने परिवार सहित आठ अग्रमहिषियों और नृत्यानीक तथा गन्धर्वानीक अर्थात् नृत्य करने वाले और गायन करने वाले देवों के साथ उस विमान की प्रदक्षिणा करते हुए पूर्व दिशा की तरफ वाली त्रिसोपान से उस विमान पर चढ़ कर पूर्व दिशा की तरफ मुँह करके अपने सिंहासन पर बैठते हैं। इसी प्रकार सामानिक देव उत्तरदिशा के सोपान से चढ़ कर और शेष देव एवं देवियाँ दक्षिण दिशा के त्रिसोपान से चढ़ कर अपने-अपने भद्रासन पर बैठते हैं ॥१७॥

तए णं तस्स सक्कस्स तंसि दुरूढस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तयाणंतरं च णं पुण्ण-कलसभिंगारं दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा य दंसणरइय आलोअदरिसणिज्जा वाउद्धुयविजयवेजयंती य समूसिया गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तया-णंतरं छत्तभिंगार तयाणंतरं च णं वइरामयवट्टलट्ठसंठिय-सुसिलिट्ठपरिघट्ठ सुपइट्ठिए विसिट्ठे अणेगवर पंचवण्णकुडभी-सहस्सपरिमंडियाऽभिरामे वाउद्धुय-विजयवेजयंतीपडागा छत्ता इछत्त-कलिए तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे जोयणसहस्स-भूसिए महइमहालए महिंदज्झए पुरओ अहाणुपुव्वीए संप-ट्ठिए। तयाणंतरं च णं सरूवणेवत्थपरिअच्छियसुसज्जा सव्वालंकार-विभूसिया पंच अणीया पंच अणीयाहिवइणो जाव संपट्ठिया। तयाणंतरं च णं बहवे आभिओगिया देवा य देवीओ य सएहिं सएहिं रूवेहिं जाव णिओगेहिं सक्कं देविंदं देवरायं पुरओ य मग्गओ य पासओ य अहाणु-पुव्वीए संपट्ठिया। तयाणंतरं च बहवे सोहम्मकप्पवासी देवा य देवीओ य सव्विड्ढीए जाव दूरूढा समाणा मग्गओ य जाव संपट्ठिया ॥ १८ ॥

अर्थ—जब शक्रेन्द्र अपने सिंहासन पर बैठ जाते हैं, तब उनके आगे आठ मङ्गल यथाक्रम से चलते हैं—पूर्णकलश, झारी, दिव्य छत्र, चमर और पताका आदि। इसके बाद उन्नत गगनतल

को स्पर्श करती हुई, आँखों को सुखकारी एवं दर्शनीय, वायु से प्रेरित विजय वैजयन्ती नामक पताकाएँ चलती हैं। तदनन्तर छत्रसहित कलश चलता है। इसके आगे अनेक प्रकार की पाँच वर्णों वाली अन्य छोटी ध्वजाओं से सुशोभित, वायु से प्रेरित वैजयन्ती नामक पताकाओं से तथा छत्रातिछत्र से युक्त, गगनतल को स्पर्श करने वाली एक हजार योजन की महेन्द्रध्वजा चलती है। इसके बाद अपने योग्य रूप और वेशभूषा से सुसज्जित तथा सब अलङ्कारों से विभूषित पाँच अनीक और पाँच अनीकाधिपति देव चलते हैं। तत्पश्चात् बहुत से देव और देवियाँ अपनी-अपनी ऋद्धि से युक्त होकर दिव्य यान विमानों पर बैठे हुए शक्रेन्द्र के आगे, पीछे एवं आसपास यथायोग्य चलते हैं ॥१८॥

तए णं से सक्के देविंदे देवराया तेणं पंचाणीयपरिक्खित्तेणं जाव परिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं सोहम्मस्स कप्पस्स मज्झंमज्झेणं तं दिव्वं देविड्ढिं जाव उवदंसेमाणे उवदंसेमाणे जेणेव सोहम्मस्स कप्पस्स उत्तरिल्ले णिज्जाणमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता साहस्सीएहिं विग्गहेहिं ओवयमाणे ओवयमाणे ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे तिरियमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं जेणेव णंदीसरवरे दीवे जेणेव दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं जा चेव सूरियाभस्स वत्तव्वया णवरं सक्काहिगारो वत्तव्वो जाव तं दिव्वं देविड्ढिं जाव दिव्वं जाणविमाणं पडिसाहरेमाणे पडिसाहरेमाणे जाव जेणेव भगवओ तित्थयरस्स

जम्मणणयरे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मण भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेणं दिव्वेणं जाणविमाणेणं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मण भवणस्स उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए चउरंगुलमसंपत्ते धरणीयले तं दिव्वं जाणविमाणं ठवइ, ठवित्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं दोहिं अणीएहिं गंधव्वाणीएण य णट्टाणीएण य सद्धिं ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ पुरच्छिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पचोरुहइ।

तए णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउरासीइसामाणियसाहस्सीओ ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पचोरुहंति। अवसेसा देवा य देवीओ य ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पचोरुहंति ॥ १६ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् पाँच अनीक यावत् चौरासी हजार सामानिक देवों से घिरा हुआ और महेन्द्रध्वजा जिनके आगे चलती है ऐसे शक्रेन्द्र अपनी समस्त ऋद्धि तथा वादित्रों के महान् शब्दों के साथ, सौधर्म देवलोक के बीचोबीच होकर अपनी दिव्य देवऋद्धि का प्रदर्शन करते हुए जहाँ सौधर्म देवलोक का उत्तर दिशा में गमना है वहाँ आते हैं। वहाँ एक लाख योजन का शरीर बना कर उस निर्याण मार्ग से निकल कर तिच्र्छालोक के असंख्यात द्वीप समुद्रों में होते हुए नन्दीश्वर द्वीप में आग्नेय कोण में स्थित

लेकर पर्वत पर आते हैं। इस प्रकार राजप्रश्नीय सूत्र में सूर्याभ-
। की जैसी वक्तव्यता कही है वैसी यहाँ भी कह देनी चाहिए,
न्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ शक्रेन्द्र का अधिकार है, इसलिए
क्रेन्द्र का कथन करना चाहिए।

तत्पश्चात् वे शक्रेन्द्र अपनी दिव्य देव ऋद्धि तथा यान
मान का संकोच करके तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म नगर में आते
। वहाँ आकर उस दिव्य यान विमान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् के
न्म भवन की तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं। तत्पश्चात् ईशानकोण
पृथ्वी से चार अङ्गुल ऊपर उस दिव्य यान विमान को रख देते
। फिर आठ अग्रमहिषियाँ और गन्धर्वानीक तथा नृत्यानीक
न दो अनीकों के साथ शक्रेन्द्र पूर्व दिशा की सीढी द्वारा उस
न विमान से नीचे उतरते हैं। फिर शक्रेन्द्र के चौरासी हजार
मानिक देव, उत्तर दिशा की सीढी द्वारा और बाकी देव और
वियाँ दक्षिण दिशा की सीढी द्वारा उस दिव्य यान विमान से
चे उतरते हैं ॥१६॥

(धन्य हो ! रत्नकुक्षिधारिणी को)

तए णं से सक्के देविंदे देवराया चउरासीइ सामाणिय-
ाहस्सीहिं जाव सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव दुंदुहि-
णिग्घोसणाइयवेणं जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य
ेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए चेव पणामं करेइ,
करित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिक्खुत्तो आया-
हिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता करयल जाव एवं वयासी—
णमोत्थुणं ते रयणकुच्छिधारिए एवं जहा दिसाकुमारीओ

धण्णासि पुण्णासि तं कयत्थासि । अहण्णं देवाणुप्पिए! सक्के णामं देविंदे देवराया भगवओ तित्थयरस्स जम्मण महिमं करिस्सामि तण्णं तुब्भेहिं ण भीइयव्वं त्तिकट्टु, ओसोवणिं दलयइ; दलयित्ता तित्थयरपडिरूवगं विउव्वइ, विउव्वित्ता एगे सक्के भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं गिण्हइ एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, दुवे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति, एगे सक्के पुरओ वज्जपाणि पकड्ढइ । तए णं से सक्के देविंदे देवराया अण्णेहिं बहूहिं भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणिएहिं देवेहिं देवीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव णाइएणं ताए उक्किट्ठा जाव वीईवयमाणे वीईवयमाणे जेणेव मंदरे पव्वए जेणे पंडगवणे जेणेव अभिसेयसिला जेणेव अभिसेयसीहास तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभि मुहे सण्णिसण्णे ॥ २० ॥

अर्थ—तत्पश्चात् यह शक्रेन्द्र चौरासी हजार सामानि देवों के साथ अपनी सब ऋद्धि और द्युति सहित दुंदुभि महान् शब्दों के साथ तीर्थङ्कर भगवान् और उनकी माता के पा आते हैं। उन्हें देखते ही शक्रेन्द्र उन्हें प्रणाम करते हैं और ती बार प्रदक्षिणा करके दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहते हैं। हे रत्नकुक्षिधारिके ! आपको नमस्कार हो । इत्यादि जैसा दिशा कुमारी देवियों ने कहा था वैसा ही शक्रेन्द्र भी कहते हैं कि आ धन्य हैं, पुण्यवती हैं, कृतार्थ हैं। हे देवानुप्रिये ! मैं शक्र नाम

देवराजा हूँ। मैं तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करूँगा, इससे आप डरें नहीं। ऐसा कह कर वे उन्हें अवस्वापिनी निद्रा से निद्रित कर देते हैं और तीर्थङ्कर भगवान् के सदृश रूप बना कर उनके पास रख देते हैं। फिर शक्रेन्द्र अपने समान पाँच रूप बनाते हैं। एक शक्र तीर्थङ्कर भगवान् को करतल में यानी हथेली पर उठाता है। एक शक्र पीछे छत्र धारण करता है। दो शक्र दोनों तरफ चमर ढोलते हैं और एक शक्र हाथ में वज्र धारण कर आगे चलता है।

तत्पश्चात् वह शक्रेन्द्र दूसरे बहुत से भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, और वैमानिक देव एवं देवियों के साथ अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि और द्युति सहित उत्कृष्ट दिव्यदेवगति से चलते हुए मेरु पर्वत के पण्डकवन में अभिषेकशिला पर स्थित अभिषेक सिंहासन के पास आते हैं और उस सिंहासन पर तीर्थङ्कर भगवान् को पूर्वाभिमुख यानी पूर्व दिशा की तरफ मुँह करवा कर बैठाते हैं।२०॥

(मेरू पर्वत पर)

तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया सूलपाणी वसभवाहणे सुरिंदे उत्तरड्ढलोगाहिवई अट्ठावीस विमाणवाससयसहस्साहिवई अरयंबरवत्थधरे एवं जहा सक्के, इमं णाणत्तं, महाघोसा घंटा, लहुपरक्कमो पायत्ताणीयाहिवई पुप्फओ विमाणकारी, दक्खिणे णिज्जाणमग्गे, उत्तरपुरच्छिमिल्लो रइकरगपव्वओ मंदरे समोसरइ जाव पज्जुवासइ। एवं अवसिट्ठा वि इंदा भणियव्वा जाव अच्चुओत्ति, इमं णाणत्तं—

चउरासीइ असीइ, बावत्तरी सत्तरी य सट्ठी य ।
पण्णा चत्तलीसा, तीसा वीसा दस सहस्सा ॥
॥ एए सामाणिया ॥

बत्तीसट्ठावीसा बारसट्ठ चउरो सयसहस्सा ।
पण्णा चत्तालीसा, छच्च सहस्सारे ॥
आणयपाणयकप्पे, चत्तारिसया आरणच्चुए तिण्णि
एए विमाणाणं, इमे जाण विमाणकारी देव

सोहम्मगाणं सणंकुमारगाणं बंभलोयगाणं महासुक्क पाणयगाणं इंदाणं सुघोसा घंटा । हरिणेगमेसी पाय णीयाहिवई उत्तरिल्ला णिज्जाणभूमि, दाहिणपुरच्छिमि रइकरगपव्वए । ईसाणगाणं माहिंद-लंतग-सहस्सारअच्चु गाणं य इंदाणं महाघोसा घंटा, लहुपरक्कमो पायत्ताणीया हिवई, दक्खिणिल्ले णिज्जाणमग्गे, उत्तरपुरच्छिमिल्ले रइकरगपव्वए । परिसा णं जहा जीवाजीवाभिगमे । आय रक्खा सामाणियचउग्गुणा, सव्वेसिं जाणविमाणा सव्वेसिं जोयणसयसहस्सविच्छिण्णा, उच्चत्तेणं सविमाणप्पमाण महिंदज्झया जोयणसहस्सीआ, सक्कवज्जा मंदरे समोसरंति जाव पज्जुवासंति ॥२१॥

अर्थ—तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म के समय में ईशान नाम देवेन्द्र देवराजा जो कि हाथ में शूल धारण करने वाले, वृषभवाह देवों के इन्द्र, मेरु पर्वत से उत्तर के अर्द्ध लोक के स्वामी, आका

के समान स्वच्छ एवं रजरहित निर्मल वस्त्रों को धारण करने वाले और अट्ठाईस लाख विमानों के स्वामी हैं, उनका आसन चलित होता है। तब वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर उनका जन्म महोत्सव करने के लिए जाते हैं इत्यादि वर्णन जैसा शक्रेन्द्र के लिए कहा है वैसा ही यहाँ पर भी समझना चाहिये किन्तु इनकी विशेषता है कि—इनके महाघोषा नामक घण्टा होता है। पदाति सेना का अधिपति लघुपराक्रम नामक देव उसे बजाता है। पुष्पक नामक देव यान विमान की विक्रिया करता है। दक्षिण दिशा के निर्याणमार्ग से ईशानेन्द्र नीचे उतरते हैं और ईशानकोण के रतिकर पर्वत पर विश्राम लेते हैं, फिर सीधे मेरु पर्वत जाते हैं और तीर्थङ्कर भगवान् की पर्युपासना करते हैं।

इसी प्रकार बारहवें अच्युत देवलोक तक के शेष सभी इन्द्रों का कथन कर देना चाहिये किन्तु उनमें जो विशेषता है वह पृथक् बताई जाती है। उनके सामानिक देवों की संख्या इस प्रकार है—सौधर्मेन्द्र के चौरासी हजार, ईशानेन्द्र के अस्सी हजार, सनत्कुमारेन्द्र के बहत्तर हजार, माहेन्द्र के सित्तर हजार, ब्रह्मलोकेन्द्र के साठ हजार, लान्तकेन्द्र के पचास हजार, शुक्रेन्द्र के चालीस हजार, सहस्रारेन्द्र के तीस हजार, आणत और प्राणत नामक नववें और दसवें दोनों देवलोकों का एक ही इन्द्र होता है, उसके बीस हजार व आरण और अच्युत नामक ग्यारहवें और बारहवें दोनों देवलोकों का एक ही इन्द्र होता है उसके दस हजार सामानिक देव होते हैं।

अब क्रमशः इन बारह देवलोकों के दस इन्द्रों के विमानों की संख्या बताई जाती है—

(१) बत्तीस लाख। अट्ठाईस लाख। (३) बारह लाख। (४) आठ लाख। (५) चार लाख (६) पचास हजार। (७) चालीस हजार (८) छह हजार (९) चार सौ (१०) तीन सौ।

अब इन दस इन्द्रों के यानविमान बनाने वाले देवों के नाम क्रमशः बतलाये जाते हैं—

(१) पालक (२) पुष्पक (३) सौमनस (४) श्री वत्स (५) नन्दावर्त (६ कामगम (७) प्रीतिगम (८) मनोरम (६) विमल (१०) सर्वतोभद्र।

अब इन दस इन्द्रों में समुच्चय रूप से कुछ बातों की समानता बताई जाती है—सौधर्म, सनत्कुमार, ब्रह्मलोक, महाशुक्र और आणत प्राणत इन देवलोक के पांच इन्द्रों के सुघोषा घण्टा, हरिणगमेषी नामक देव पदाति सेना का अधिपति उत्तर दिशा का निर्याणमाग और आग्नेयकोण का रतिकर पर्वत विश्राममार्ग होता है।

ईशान, माहेन्द्र, लान्तक, सहस्रार और आरण अच्युत इन देवलोकों के पाँच इन्द्रों के महाघोषा नामक घण्टा, लघुपराक्रम देव पदातिसेना का अधिपति, दक्षिण दिशा का निर्याण मार्ग और ईशानकोण का रतिकर पर्वत विश्राम स्थान होता है।

इन सब इन्द्रों की आभ्यन्तर, मध्य और बाह्य ये तीनों परिषदाएँ जिस प्रकार जीवाजीवाभिगम सूत्र में कही हैं उसी प्रकार यहाँ भी जाननी चाहिये।

[illegible] सब इन्द्रों के आत्मरक्षक देव समानिक देवों से चौगुने होते हैं। सब इन्द्रों के यानविमान एक लाख योजन के लम्बे चौड़े होते हैं और अपने अपने देवलोक के विमान जितने ऊँचे होते हैं। सबकी माहेन्द्रध्वजा एक हजार योजन की होती है। प्रथम सौधर्म देवलोक के इन्द्र तो तीर्थङ्कर भगवान के जन्म नगर में आते हैं और शेष नौ इन्द्र अपने-अपने देवलोक से सीधे मेरु पर्वत पर जाते हैं ॥२१॥

महेन्द्रध्वजा और विमान बनाने वाला आभियोगिक देव होता है। शेष सारा वर्णन पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिये तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करने के लिए चमरेन्द्र अपने स्थान से सीधा मेरु पर्वत पर जाता है ॥२२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं बली असुरिंदे असुरराया एवमेव णवरं सट्ठी सामाणियसाहस्सीओ, चउगुणा आयरक्खा, महादुमो पायत्ताणीयाहिवई, महाओहस्सरा घंटा सेसं तं चेव परिसाओ जहा जीवाभिगमे ॥२३॥

अर्थ—बलीचञ्चा राजधानी में बलीन्द्र नामक असुरेन्द्र असुर राजा यावत् भोग भोगता हुआ विचरता है। उसका सारा वर्णन चमरेन्द्र की तरह जानना चाहिये; सिर्फ इतनी विशेषता है कि—इनके साठ हजार सामानिक देव, दो लाख चालीस हजार आत्म रक्षक देव, पदाति सेना का अधिपति महाद्रुम देव और महा ओघस्वरा घण्टा होती है। शेष सारा वर्णन पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिये। परिषदाओं का वर्णन जैसा जीवाभिगम सूत्र में कहा है, वैसा ही यहाँ जानना चाहिये। वह बलीन्द्र सीधा मेरु पर्वत पर जाता है ॥२३॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं धरणे तहेव णाणत्तं छ सामाणियसाहस्सीओ छ अग्गमहिसीओ, चउग्गुणा आयरक्खा, मेघस्सरा घंटा, भद्दसेणो पायत्ताणीयाहिवई विमाणं पणवीसं जोयणसहस्साइं महिंदज्झओ अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं। एवमसुरिंदवज्जियाणं भवणवासिइंदाणं, णवरं असुराणं ओघस्सरा घंटा, णागाणं मेघस्सरा, सुवण्णाणं

रस्सरा, विज्जूणं कोंचस्सरा, अग्गीणं मंजुस्सरा, दिसाणं
ुघोसा, उदहीणं सुस्सरा दीवाणं महुरस्सरा, वाऊणं
दिस्सरा, थणियाणं णंदिघोसा ।

चउसट्ठी सट्ठी खलु, छच्च सहस्सा उ असुरवज्जाणं ।
सामाणिया उ एए, चउग्गुणा आयरक्खा उ ॥
दाहिणिल्लाणं पायत्ताणीयाहिवई ।
भद्दसेणो उत्तरिल्लाणं दक्खो त्ति ॥२४॥

अर्थ—दक्षिण दिशा के नाग कुमारों का इन्द्र धरण आनन्द
के भोग भोगता हुआ विचरण करता है। तीर्थङ्कर भगवान् के
म के समय उसका आसन चलित होता है। तब अवधिज्ञान
रा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर उनका जन्म महो-
व करने के लिये अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि सहित वह मेरु पर्वत पर
ता है। इसका सारा वर्णन पूर्वोक्त वर्णन के समान समझना
हिये सिर्फ इतना फर्क है कि—इसके छह हजार सामानिक देव,
ः अग्रमहिषियाँ, चौबीस हजार आत्मरक्षक देव, मेघस्वरा घण्टा,
ाति सेना का अधिपति भद्रसेन, पचीस हजार योजन का लम्बा
ा विमान और अढाई सौ योजन की ऊँची महेन्द्रध्वजा होती है।

चमरेन्द्र और बलीन्द्र के सिवाय दक्षिण और उत्तर दिशा
की जाति के भवनपति देवों के अठारह इन्द्रों का वर्णन धरणेन्द्र
समान जानना चाहिये।

दस भवनपति देवों में पारस्परिक जो विशेषता होती है अब
ह बतलाई जाती है—असुरकुमारों के ओघस्वरा घण्टा, नाग-
मारों के मेघस्वरा, सुवर्णकुमारों के हंसस्वरा, विद्युत्कुमारों के

क्रौंचस्वरा, अग्निकुमारों के मञ्जुस्वरा, दिशाकुमारों के मञ्जुघोषा, उदधिकुमारों के सुस्वरा, द्वीपकुमारों के मधुरस्वरा, वायुकुमारों के नन्दिघोषा नामक होती है।

अब एक संग्रहणी गाथा द्वारा भवनपति देवों के इन्द्रों सामानिक और आत्मरक्षक देवों की संख्या बतलाई गई है—

चमरेन्द्र के ६४ हजार, बलीन्द्र के ६० हजार, और शेष भवनपति देवों के अठारह इन्द्रों के प्रत्येक के छह छह हजार सामानिक देव होते हैं और आत्मरक्षक देव इनसे चौगुने होते हैं अर्थात् चमरेन्द्र के दो लाख छप्पन हजार, बलीन्द्र के दो लाख चालीस हजार और शेष अठारह इन्द्रों के चौबीस हजार आत्म रक्षक देव होते हैं।

दस जाति के भवनपति देवों में दक्षिण दिशा के दस इन्द्र और उत्तर दिशा के दस इन्द्र, इस प्रकार बीस इन्द्र होते हैं। दक्षिण दिशा के इन्द्रों में चमरेन्द्र की पदाति सेना का अधिपति द्रुम नामक देव होता है और शेष नौ इन्द्रों की पदाति सेना का अधिपति भद्रसेन नामक देव होता है। उत्तर दिशा के इन्द्रों में बलीन्द्र की पदाति सेना का अधिपति महाद्रुम नामक देव होता है और शेष नौ इन्द्रों की पदाति सेना का अधिपति दक्ष नामक देव होता है ॥२४॥

वाणमंतर-जोइसिया णेयव्वा एवं चेव णवरं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ, चत्तारि अग्गमहिसीओ, सोलस आयरक्खसहस्सा, विमाणा जोयण सहस्सं, महिंदज्झया पणवीस जोयणसयं, घंटा दाहिणाणं मंजुस्सरा, उत्तराणं मंजुघोसा, पायत्ताणीयाहिवई विमाणकारी य आभियोगा

वा। जोइसियाणं सुस्सरा सुस्सरणिग्घोसाओ घंटाओ, दरे समोसरणं जाव पज्जुवासंति ॥२५॥

अर्थ—वाणव्यन्तर और ज्योतिषीदेवों के इन्द्रों का वर्णन वनपति देवों के इन्द्रों के समान जानना चाहिये। इनमें सिर्फ तना फर्क है—उनमें प्रत्येक इन्द्र के चार हजार सामानिक देव, ार अग्रमहिषियाँ, सोलह हजार आत्मरक्षक देव होते हैं। इनके मान एक हजार योजन लम्बे चौड़े होते हैं और महेन्द्रध्वजा क सौ पचीस योजन की ऊँची होती है।

वाणव्यंतर जाति के देवों के बत्तीस इन्द्र होते हैं, उनमें से क्षिण दिशा के सोलह इन्द्रों के मञ्जुस्वरा नामक घण्टा होती है ौर उत्तर दिशा के सोलह इन्द्रों के मञ्जुघोषा नामक घण्टा होती । इन सब इन्द्रों के पदाति सेना का अधिपति और यानविमान नाने वाला आभियोगिक देव ही होता है।

ज्योतिषी देवों में चन्द्र जाति के देवों के इन्द्र के सुस्वरा ौर सूर्य जाति के देवों के इन्द्र के सुस्वर निर्घोषा घण्टा होती है।

इस प्रकार वैमानिक देवों के दस इन्द्र, भवनपति देवों के ीस इन्द्र, वाणव्यन्तर जाति के देवों के बत्तीस इन्द्र और ज्यो- िषी देवों के दो इन्द्र ये कुल मिलाकर ६४ इन्द्र मेरु पर्वत पर ीर्थंकर भगवान् का जन्म महोत्सव करते हैं। इनमें से सौधर्मदेव- ोक के इन्द्र तो तीर्थङ्कर भगवान् के जन्मनगर एवं जन्म स्थान आकर तीर्थङ्कर भगवान् को मेरु पर्वत पर ले जाते हैं। शेष ३ इन्द्र अपने-अपने स्थान से सीधे मेरु पर्वत पर जाते हैं। वहाँ र पर्वत पर ये चौसठ इन्द्र मिल कर तीर्थंकर भगवान् का जन्म होत्सव करते हैं ॥२५॥

(इन्द्रों द्वारा अभिषेक)

तए णं से अच्चुए देविंदे देवराया महं देवाहिवे आभिओगे देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! महत्थं महग्घं महारिहं विउलं तित्थयराभिसेयं उवट्ठवेह ॥२६॥

अर्थ—इसके बाद सब इन्द्रों में बड़े तथा सब देवों के स्वामी अच्युत नामक देवेन्द्र देवराजा आभियोगिक देवों को बुलाते हैं और बुला कर इस प्रकार कहते हैं कि—हे देवानुप्रियो ! महा प्रयोजन वाला, महामूल्यवान और महापुरुषों के योग्य तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक यानी जन्ममहोत्सव करने योग्य समस्त सामग्री मेरे पास लाओ ॥२६॥

तए णं ते आभिओगा देवा हट्ठतुट्ठ जाव पडिसुणित्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं जाव समोहणित्ता अट्ठसहस्सं सोवण्णियकलसाणं, एवं रुप्पमयाणं मणिमयाणं सुवण्णरुप्पमयाणं सुवण्णमणिमयाणं रुप्पमणिमयाणं सुवण्णरुप्पमणिमयाणं, अट्ठसहस्सं भोमिज्जाणं, अट्ठसहस्सं चंदणकलसाणं, एवं भिंगाराणं, आयंसाणं, थालाणं, पाईणं, सुपइट्ठगाणं, चित्ताणं, रयणकरंडगाणं, वायकरगाणं, पुप्फचंगेरीणं, एवं जहा सूरियाभस्स सव्वचंगेरीओ सव्वपडलगाइं विसेसियतराइं भणियव्वाइं, सीहासणछत्तचामरतेल्लसमुग्ग . जाव

रिसवसमुग्गा तालियंटा जाव अट्ठसहस्सं कडुच्छुगाणं
वेउव्वंति, विउव्वित्ता साहाविए विउव्विए य कलसे जाव
कडुच्छुए य गिण्हित्ता जेणेव खीरोदए समुद्दे तेणेव
खीरोदगं गिण्हंति, गिण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं पउमाइं
जाव सहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हंत्ति, एवं पुक्खरोदाओ जाव
भरहेरवयाणं मागहाइतित्थाणं उदगं मट्टियं य गिण्हंति,
गिण्हित्ता एवं गंगाईणं महाणईणं जाव चुल्लहिमवंताओ
सव्वतुअरे सव्वपुप्फे सव्वगंधे सव्वमल्ले जाव सव्वोसहीओ
सिद्धत्थए य गिण्हंति, गिण्हित्ता पउमद्दहाओ दहोदगं
उप्पलाईणि य, एवं सव्वकुलपव्वएसु वट्टवेयड्ढेसु सव्व-
महद्दहेसु सव्ववासेसु सव्वचक्कवट्टिविजएसु वक्खारपव्वएसु
अंतरणईसु विभासिज्जा जाव उत्तरकुरुसु जाव सुदंसणभद्द-
सालवणे सव्वतुअरे जाव सिद्धत्थए य गिण्हंति, एवं
णंदणवणाओ सव्वतुअरे जाव सिद्धत्थए य सरसं य
गोसीसचंदणं दिव्वं य सुमणदामं गिण्हंति एवं सोमणस-
पंडगवणाओ य सव्वतुअरे जाव सुमणदामं दद्दरमलय-
सुगंधिए गंधे य गिण्हंति, गिण्हित्ता एगओ मिलंति,
मिलित्ता जेणेव सामी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता
महत्थं जाव तित्थयराभिसेगं उवट्ठवेंति ॥२७॥

अर्थ—अच्युतेन्द्र की उपरोक्त आज्ञा को सुन कर वे आभि-
योगिक देव बड़े प्रसन्न होते हैं। तत्पश्चात् ईशान कोण में जाकर

वैक्रिय समुद्घात करते हैं। फिर वैक्रिय द्वारा १००८ सोने के कलश, १००८ चाँदी के कलश, १००८ मणियों के कलश, १००८ सोने और मणियों के कलश, १००८ चाँदी और मणियों के कलश, १००८ सोने चाँदी और मणियों के कलश, १००८ मिट्टी के कलश, १००८ चन्दन के कलश, १००८ झारी, १००८ काच, १००८ थाली, १००८ कटोरी, १००८ सुप्रतिष्ठक नामक पात्र विशेष, १००८ चित्र १००८ रत्नों के करंडिए, १००८ वातकरक अर्थात् बाहर से चित्रित और भीतर से जलरहित खाली घड़े, १००८ फूलों की टोकरियाँ १००८ आभूषणों की टोकरियाँ, १००८ फूलों की टोकरियों के ढकने के कपड़े, १००८ आभूषणों की टोकरियों को ढकने के कपड़े, १००८ पंखे और १००८ धूप देने के कुड़छे, सिंहासन, छत्र, चामर, तथा तेल और सरसों के डिब्बे आदि बनाते हैं। राजप्रश्नीय सूत्र में सूर्याभदेव के इन्द्राभिषेक के समय जैसा कथन किया है, वैसा ही यहाँ भी जानना चाहिये; किन्तु यहाँ सब पदार्थों का कथन उनसे विशेष रूप से करना चाहिये। आभियोगिक देव इन सब पदार्थों को विक्रिया से बनाते हैं। तत्पश्चात वैक्रिय किये हुए इन कलशादि पदार्थों को और स्वाभाविक पदार्थों को ग्रहण करके क्षीरोदक समुद्र में से जल और कमल ग्रहण करते हैं। तत्पश्चात भरत और ऐरवत क्षेत्र के मागध आदि तीर्थों से जल और मिट्टी, गङ्गा आदि महानदियों से जल और मिट्टी, चुल्लहिमवान् पर्वत से सब प्रकार की औषधियाँ सुगन्धित पदार्थ, भिन्न-भिन्न प्रकार से गूँथी हुई फूलमालाएँ, राजहंसादि महौषधियाँ और सब प्रकार के मांगलिक पदार्थों को ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार हिमालय आदि सब कुल पर्वत, वृत्तवैताढ्य पर्वत, पद्मद्रह, भरतादि सब क्षेत्र चक्रवर्तियों के सब विजय, माल्यवान् और चित्रकूट आदि सब वक्षस्कार पर्वत और ग्राहावती आदि समस्त अन्तर्नदियों के विषय

में कह देना चाहिये अर्थात् पर्वतों से तुवर आदि औषधियाँ, द्रहों में से कमल, कर्मभूमि के क्षेत्रों में रहे हुए मागध आदि तीर्थों में से जल और मिट्टी, तथा नदियों के दोनों तटों की मिट्टी और जल ग्रहण करते हैं। सुदर्शन पर्वत, भद्रशाल वन और नन्दन वन से तथा सोमनस और पण्डक वन से गोशीर्ष चन्दन, सब प्रकार की औषधियाँ यावत् फूलमालाएँ आदि तथा दर्दर पर्वत और मलय पर्वत से चन्दन एवं चन्दन से सुगन्धित पदार्थों को ग्रहण करते हैं। तत्पश्चात् इस समस्त सामग्री को ग्रहण करने के लिए इधर-उधर बिखरे हुए वे सब आभियोगिक देव एक जगह इकट्ठे होते हैं और त्रिलोकपूज्य तीर्थङ्कर भगवान् के जन्माभिषेक योग्य समस्त सामग्री को लेकर अच्युतेन्द्र के पास आते हैं ॥२७॥

तए णं से अच्चुए देविंदे देवराया दसहिं सामाणियसाहस्सीहिं तेतीसेहिं तायत्तीसएहिं चउहिं लोगपालेहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणीएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं चत्तालीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे तेहिं साभाविएहिं विउव्विहिं य वरकमलपइट्ठाणेहिं सुरभिवरवारिपडिपुण्णेहिं चंदणकयचच्चाएहिं आविद्धकंठेगुणेहिं पउमुप्पलपिहाणेहिं करयलसुकुमारपरिग्गहिएहिं अट्ठसहस्सेणं सोवण्णियाणं कलसाणं जाव अट्ठसहस्सेणं भोमेज्जाणं जाव सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतुअरेहिं जाव सव्वोसहिसिद्धत्थएहिं सव्विड्ढीए जाव रवेणं महया महया तित्थयराभिसेएणं अभिसिंचंति ॥ २८ ॥

उस समय सब देव बड़े प्रसन्न होते हैं। कितनेक देव हाथों में छत्र, चामर, धूप के कुड़छे, फूल और सुगन्धित पदार्थ लेकर तथा शक्रेन्द्र वज्र, और ईशानेन्द्र त्रिशूल लेकर एवं अन्य देव दोनों हाथ जोड़ कर तीर्थङ्कर भगवान् के सन्मुख खड़े रहते हैं। कितनेक देव पण्डक वन की सफाई करते हैं और कितनेक देव पानी का छिड़काव करते हैं तथा चन्दन आदि का लेप करते हैं। इस प्रकार पण्डक वन को साफ, पवित्र और सुगन्धित बना देते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों से लाई हुई चन्दन आदि वस्तुओं का इस तरह ढेर करते हैं जैसे मानो क्रमशः दूकानें लगाई हों। इस प्रकार जगह जगह चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों का ढेर करते पण्डक वन को गन्धवट्टी के समान अत्यन्त सुगन्धित बना देते हैं। कितनेक देव चाँदी, सोना, रत्न, वज्र, आभूषण, पत्र, पुष्प, फल, बीज, माला, गन्ध, हिङ्गलू आदि वर्ण और सुगन्धित पदार्थों की वृष्टि करते हैं। कितनेक देव परस्पर में चाँदी, चूर्ण एवं माङ्गलिक पदार्थ देते हैं अथवा इन पदार्थों से अपने शरीर को सुशोभित करते हैं। कितनेक देव (१) तत-वीणा आदि, (२) वितत-ढोल आदि, (३) घन-ताल आदि, (४) शुषिर-बाँसुरी आदि ये चार प्रकार के बाजे बजाते हैं। कितनेक देव (१) उत्क्षिप्त, (२) पादबद्ध, (३) मन्दाक और (४) रोचितावसान ये चार प्रकार के गाने गाते हैं। कितनेक देव (१) आञ्चित (२) द्रुत (३) आरभट और (४) भसोल यह चार प्रकार के नाच करते हैं। कितनेक देव (१) दार्ष्टान्तिक, (२) प्रातिश्रुतिक, (३) सामन्तोपनिपातिक या सामान्यतो विनिपातिक और (४) लोकमध्यावसानिक—यह चार प्रकार का अभिनय करते हैं। जिस प्रकार भगवान् महावीर स्वामी के सामने सूर्याभदेव ने बत्तीस प्रकार के नाटक बताये थे, वैसे ही कितनेक देव बत्तीस प्रकार के नाटक बतलाते हैं। कितनेक देव नीचे गिरते हैं, उछलते हैं,

अङ्गों को संकुचित और विस्तृत करते हैं। कितनेक देव भ्रान्त-संभ्रान्त नामक ऐसा दिव्य नाटक दिखलाते हैं जिसे देख कर दर्शक लोग आश्चर्य में पड़ कर भ्रान्तसम्भ्रान्त बन जाते हैं। कितनेक देव ताण्डव नृत्य और अभिनयशून्य लासिक नृत्य करते हैं। कितनेक देव अपने शरीर को स्थूल बनाते हैं। कितनेक देव थूत्कार और आस्फोटन आदि करते हैं। कितनेक देव पहलवान की तरह अपनी भुजाओं को ठोकते हैं और परस्पर मल्लयुद्ध करते हैं। कितनेक देव सिंहनाद करते हैं, घोड़े की तरह हिनहिनाहट, हाथी की तरह गुल-गुलाहट और रथ की तरह घनघनाहट शब्द करते हैं। कितनेक देव पहलवान की तरह उछलते हैं, आनन्दित होकर परस्पर चपेटा और पीठ में घूंसा मारते हैं। कितनेक देव पैरों से भूमि को ताड़ित करते हैं हाथों से भूमि पर चपेटा मारते हैं। कितनेक देव हकार शब्द, पूत्कार शब्द और थक्क थक्क शब्द करते हैं। कितनेक देव खुशी के मारे ऊपर उछलते हैं, नीचे गिरते हैं तिर्च्छे गिरते हैं। कितनेक देव ज्वाला के समान तथा तप्त और दीप्त अङ्गार के समान रूप बनाते हैं। कितनेक देव मेघ के समान गर्जना करते हैं, बिजली के समान चमकते और वर्षा करते हैं। कितनेक देव आनन्द से कहकह, दुहुदुहु और हुहु शब्द करते हैं। कितनेक देव विविध प्रकार का रूप बना कर नाचते हैं। कितनेक देव खुशी के मारे इधर-उधर दौड़ते हैं। इस प्रकार जीवाजीवाभिगम सूत्र में जैसे विजयदेव के अभिषेक का वर्णन किया है उसी प्रकार सारा वर्णन यहाँ भी समझ लेना चाहिये ॥२६॥

तए णं से अच्चुइंदे सपरिवारे सामिं तेणं महया महया अभिसेएणं अभिसिंचइ अभिसिंचित्ता करयलपरिग्गहियं जाव मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धा-

फूल, आम मञ्जरी, नवमालिका, बकुल, तिलक, कर्णवीर, कुन्द, कुब्जक आदि वृक्षों के फूल और कोरंट वृक्ष के पत्ते आदि सब सुगन्धित पदार्थों एवं उपरोक्त पाँच वर्ण के फूलों का घुटने परिमाण ढेर करते हैं, किन्तु जो फूल हाथ से नीचे गिर पड़ते हैं, उन्हें उसमें शामिल नहीं करते हैं। उपरोक्त इन पाँच वर्ण के फूलों से तीर्थङ्कर भगवान् की यथा योग्य सेवा करते हैं। तत्पश्चात् चन्द्रकान्त मणि, रत्न, वज्र और वैडूर्य मणि से बनी हुई डांडी वाले तथा सुवर्ण मणि और रत्नों की रचना यानी मीनाकारी से चित्रित वज्रमय कुड़छे को ग्रहण करते हैं उसमें कालागुरु, श्रेष्ठ कुन्दुरुक्क आदि महासुगन्धित पदार्थ डाल कर आदरपूर्वक तीर्थङ्कर भगवान् को धूप देते हैं। फिर दूसरों के दर्शन में बाधा न पड़े इस दृष्टि से सात-आठ पैर पीछे हट कर मस्तक पर अञ्जलि करके पुनरुक्ति दोष रहित, अर्थयुक्त एवं शुद्ध पाठ युक्त एक सौ आठ महान् श्लोकों से शुद्ध उच्चारण पूर्वक स्तुति करते हैं। फिर बाएँ घुटने को खड़ा करके और दाहिने घुटने को जमीन पर टेक कर, दोनों हाथ जोड़ कर और मस्तक पर अञ्जलि करके इस प्रकार स्तुति करते हैं—हे सिद्ध! बुद्ध! कर्मरजरहित! श्रमण! समाधिस्थ चित्त वाले, कृतकृत्य! सम्यक् प्रकार से आप्त! सम्यक् योग वाले! शल्यों का विनाश करने वाले! निर्भय! राग द्वेष रहित! ममत्व रहित! सर्वसङ्ग रहित! मान का मर्दन करने वाले! सर्व गुणों में रत्न के समान ब्रह्मचर्य के सागर! अनन्त ज्ञान के धारक! अप्रमेय! भव्य! धर्म रूप चक्र से चारगति का अन्त करने वाले धर्मचक्रवर्तिन्! हे अरिहन्त भगवन्! आपको नमस्कार हो! इस प्रकार स्तुति करते हुए वन्दना नमस्कार करते हैं। वन्दना नमस्कार करके न अति दूर और न अति नजदीक किन्तु उचित स्थान पर स्थित होकर सुश्रूषा करते हुए पर्युपासना करते हैं।

इस प्रकार जैसे अच्युतेन्द्र का कथन किया है वैसे ही ईशानेन्द्र तक भी कह देना चाहिये अर्थात् ईशानेन्द्र से लेकर अच्युतेन्द्र पर्यन्त नौ इन्द्र इसी तरह अभिषेक करते हैं और इसी प्रकार भवनपति देवों के बीस इन्द्र, वाणव्यन्तर देवों के बत्तीस इन्द्र और ज्योतिषी देवों के दो इन्द्र अभिषेक करते हैं अर्थात शक्रेन्द्र के सिवाय त्रेसठ इन्द्र इस प्रकार उपरोक्त रीति से तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक करते हैं ॥२०॥

तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया पंच ईसाणे विउव्वइ, विउव्वित्ता एगे ईसाणे भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे, एगे ईसाणे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, दुवे ईसाणा उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति, एगे ईसाणे पुरओ सूलपाणी चिट्ठइ ॥२१॥

अर्थ—तत्पश्चात ईशानेन्द्र देवेन्द्र देवराजा विक्रिया द्वारा अपने पाँच रूप बनाते हैं। एक ईशानेन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् को हथेली पर धर कर पूर्व की तरफ मुँह करके सिंहासन पर बैठते हैं। एक ईशानेन्द्र पीठ पीछे खड़ा रह कर छत्र धारण करता है। दो ईशानेन्द्र दोनों तरफ चामर ढोलते हैं और एक ईशानेन्द्र हाथ में त्रिशूल लेकर सामने खड़े रहते हैं ॥२१॥

तए णं से सक्के देविंदे देवराया आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एसो वि तह चेव अभिसेयआणत्तिं देइ, ते वि य तह चेव उवणेंति। तए णं से सक्के देविंदे देवराया भगवओ तित्थयरस्स चउद्दिसिं चत्तारि धवलवसभे

विउव्वेइ, सेए संखदलविमलणिम्मलदधिघणगोखीरफेणरयय-णिगरप्पगासे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे, पडिरूवे, तए णं तेसिं चउण्हं धवलवसभाणं अट्ठहिं सिंगेहिंतो अट्ठ तोयधाराओ उड्ढं वेहासं उप्पयंति, उप्पइत्ता एगओ मिलायंति, मिलाइत्ता भगवओ तित्थयरस्स मुद्धाणंसि-णिवयंति । तए णं से सक्के देविंदे देवराया चउरासीईए सामाणियसाहस्सीहिं एयस्स वि तहेव अभिसेओ भणियव्वो जाव णमोत्थुणं ते अरहओ तिकट्टु वंदइ णमंसइ जाव पज्जुवासइ ॥३२॥

अर्थ—जब ईशानेन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् को अपने करतल में लेकर सिंहासन पर बैठ जाते हैं तब शक्रेन्द्र जो कि अब तक तीर्थङ्कर भगवान् को अपने करतल में लेकर सिंहासन पर बैठे हुए थे, वे मुक्तहस्त होकर अपने आभियोगिक देवों को बुलाते हैं, उन्हें बुला कर अच्युतेन्द्र के समान ही अभिषेक सामग्री लाने के लिए आज्ञा देते हैं। उनकी आज्ञा पाकर आभियोगिक देव अभिषेक सामग्री लाकर शक्रेन्द्र के सामने रखते हैं।

तब वे शक्रेन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् के चारों दिशाओं में चार सफेद बैलों का रूप बना कर खड़ा करते हैं। वे बैल शंख के चूर्ण समान, अत्यन्त निर्मल दधिपिण्ड के समान और गाय के दूध के समान और गाय के दूध के फेन के समान एवं चाँदी के समूह के समान सफेद होते हैं तथा मन को प्रसन्न करने वाले दर्श-नीय, अभिरूप और प्रतिरूप होते हैं।

तत्पश्चात् उन चार बैलों के आठ सींगों से आठ जलधा-राएँ निकलती हैं। वे फव्वारे के समान आकाश में ऊपर उछलती

हैं और फिर सभी एक साथ मिल कर तीर्थङ्कर भगवान के मस्तक पर गिरती हैं तब वे शक्रेन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् का अभिषेक करते हैं। इनके अभिषेक का वर्णन अच्युतेन्द्र के समान ही जानना चाहिए यावत् वे तीर्थङ्कर भगवान् को वन्दना नमस्कार करके पर्युपासना करते हैं ॥२२॥

तए णं से सक्के देविंदे देवराया पंचसक्के विउव्वइ, विउव्वित्ता एगे सक्के भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हइ, एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, दुवे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति, एगे सक्के वज्जपाणी पुरओ पगड्डइ ॥२३॥

अर्थ—जब चौसठ ही इन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक कर चुकते हैं तब शक्रेन्द्र अपने पाँच रूप बनाते हैं। एक शक्रेन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् को अपनी हथेली पर उठाते हैं, एक शक्रेन्द्र पीठ पीछे रह कर छत्र धारण करते हैं, दो शक्रेन्द्र दोनों तरफ चामर ढोलते हैं और एक शक्रेन्द्र हाथ में वज्र लेकर तीर्थङ्कर भगवान् के सामने खड़े रहते हैं ॥२३॥

(जननी के निकट)

तए णं से सक्के चउरासीईए सामाणियसाहस्सीहिं जाव अण्णेहिं य बहूहिं भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणि-एहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव णाइयरवेणं ताए उक्किट्ठाए दिव्वाए देवगईए जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरे जेणेव जम्मणभवणे

भगवं तित्थयरं माउए पासे ठवेइ, ठवित्ता तित्थयरपडिरूवगं पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता ओसोवणीं पडिसाहरइ, पडिसा-हरित्ता एगं महं खोमजुयलं कुंडलजुयलं च भगवओ तित्थ-यरस्स उस्सीसगमूले ठवेइ, ठवित्ता एगं महं सिरिदामगंडं तवणिज्जलंबूसगं सुवएणपयरगमंडियं णाणामणिरयणविविह-हारद्धाहारउवसोहियसमुदयं भगवओ तित्थयरस्स उल्लोयंसि णिक्खिवइ। तए णं भगवं तित्थयरे अणिमिसाए दिट्ठीए-पेहमाणे पेहमाणे सुहंसुहेणं अभिरममाणे चिट्ठइ ॥२४॥

अर्थ—तब शक्रेन्द्र अपने चौरासी हजार सामानिक देव और दूसरे बहुत से भवनपति देव वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव और देवियों के साथ उत्कृष्ट दिव्य देवगति से तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म नगर में आते हैं। फिर तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन में आकर तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास उन्हें रखते हैं और उनके प्रतिरूपक को अर्थात् जब जन्माभिषेक करने के लिए तीर्थङ्कर भगवान् को मेरु पर्वत पर ले गये थे, तब उनका रूप बना कर जो प्रतिरूपक उनकी माता के पास रखा था उसे हटा लेते हैं और इसी प्रकार तीर्थङ्कर भगवान् की माता को जो अव-स्वापिनी निद्रा देकर निद्रित कर दिया था, उस अवस्वापिनी निद्रा को भी दूर कर देते हैं। फिर तीर्थङ्कर भगवान् के सिर के तकिये के नीचे एक महान् क्षोम युगल और एक कुण्डलयुगल यानी कुण्डलों का जोड़ा रखते हैं। फिर तीर्थङ्कर भगवान् की दृष्टि में आवे उस तरह से उनकी दृष्टि के सामने सुवर्णमय, सुवर्ण से मण्डित, नाना मणि रत्न एवं विविध हार और अर्द्धहारों के समूह से सुशोभित एक महान् श्रीदामगण्ड यानी शोभायुक्त विचित्र रत्नों

का बना हुआ गोल दड़ा रखते हैं। तीर्थङ्कर भगवान् उस दड़े को अनिमेष दृष्टि से देखते हुए और सुख पूर्वक क्रीड़ा करते हुए माता के पास शयन किये हुए रहते हैं ॥२४॥

(जिनमाता की सेवा)

तए णं से सक्के देविंदे देवराया वेसमणं देवं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी– खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! बत्तीसं हिरण्णकोडीओ बत्तीसं सुवण्णकोडीओ बत्तीसं णंदाइं बत्तीसं भद्दाइं सुभगे सुभगरूवजुव्वणलावण्णे य भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहराहि साहरित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।

तए णं से वेसमणे देवे सक्केणं एवं वुत्ते समाणे विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जंभए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जाव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहरह, साहरित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते जंभगा देवा वेसमणेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव खिप्पामेव बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जाव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहरंति, साहरित्ता जेणेव वेसमणे देवे तेणेव जाव पच्चप्पिणंति। तए णं से वेसमणे देवे जेणेव सक्के देविंदे देवराया जाव पच्चप्पिणइ ॥२५॥

अर्थ—तत्पश्चात् वे शक्रेन्द्र वैश्रमण देव को बुला कर कहते हैं कि हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही बत्तीस करोड़ हिरण्य, बत्तीस करोड़ सोनैया और बत्तीस सुन्दर नन्दासन तथा बत्तीस सुन्दर भद्रासनों का संहरण करके तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन में रखो। जब यह कार्य हो जाय तब आकर मुझे वापिस सूचना करो।

वैश्रमण देव शक्रेन्द्र की उपरोक्त आज्ञा को विनयपूर्वक सुन कर शिरोधार्य करते हैं। तत्पश्चात् वह वैश्रमण देव जृम्भक देवों को बुला कर कहते हैं कि हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही बत्तीस करोड़ हिरण्य, बत्तीस करोड़ सोनैया, और बत्तीस सुन्दर नन्दासन तथा बत्तीस सुन्दर भद्रासनों का संहरण करके तीर्थङ्कर भगवान के जन्म भवन में रखो। यह कार्य करके मुझे वापिस सूचना दो।

वैश्रमण देव की उपरोक्त आज्ञा को सुन कर जृम्भक देव बड़े प्रसन्न होते हैं। तत्पश्चात् वे शीघ्र ही बत्तीस करोड़ हिरण्य बत्तीस करोड़ सोनैया और बत्तीस सुन्दर नन्दासन तथा बत्तीस सुन्दर भद्रासनों का संहरण करके तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन में रखते हैं। तत्पश्चात् वे जृम्भक देव वैश्रमण देव के पास आकर उन्हें सूचना देते हैं। इसके बाद वैश्रमण देव शक्रेन्द्र के पास आकर उनकी आज्ञा उन्हें वापिस सौंपते हैं अर्थात् उन्हें यह सूचित करते हैं कि जिस कार्य के लिये आपने मुझे आज्ञा दी थी, वह कार्य पूरा हो गया है ॥२५॥

तए णं से सक्के देविंदे देवराया आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणु-प्पिया ! भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरंसि सिंघाडग

जाव महापहेसु महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा एवं वयह-हंदि ! सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणिया देवा य देवीओ य जे णं देवाणुप्पिया ! भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए उवरिं असुहं मणं पहारेइ, तस्स णं अज्जगमंजरिआ इव सयहा मुद्धाणं फुट्टउ त्तिकट्टु घोसणं घोसेह, घोसइत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । तएणं ते आभिओगिआ देवा जाव एवं देवोत्ति आणाए पडिसुणंति, पडिसुणित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता खिप्पामेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरंसि सिंघाडग जाव एवं वयासी-हंदि ! सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया देवा य देवीओ य जे णं देवाणुप्पिया ! तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए वा उवरिं असुहं मणं पहारेइ, तस्स णं अज्जगमंजरिआ इव सयहा मुद्धाणं फुट्टउ त्तिकट्टु घोसणं घोसेंति, घोसित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ॥३६॥

अर्थ—इसके पश्चात् शक्रेन्द्र आभियोगिक देवों को बुलाते हैं और बुला कर इस प्रकार कहते हैं कि हे देवानुप्रियो ! तुम तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म नगर में जाकर नगर के सभी चौराहों पर, सभी छोटे बड़े मार्गों पर एवं राजमार्गों पर इस प्रकार उद्-घोषणा करो कि अहो भवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक देव और देवियो ! आप सब सुनें,— आप में से जो कोई देव या देवी तीर्थङ्कर भगवान् और तीर्थङ्कर भगवान् की माता के ऊपर

खोटा विचार करेगा, उनका बुरा चिन्तन करेगा तो उसका मस्तक ताड़ वृक्ष की मञ्जरी के समान सौ टुकड़े करके उड़ा दिया जायगा। ऐसी उद्घोषणा करके यह मेरी आज्ञा मुझे वापिस सौंपो अर्थात् मेरी आज्ञानुसार कार्य करके मुझे वापिस सूचित करो।

तत्पश्चात् वे आभियोगिक देव शक्रेन्द्र की आज्ञा को विनयपूर्वक सुनते हैं एवं शिरोधार्य करते हैं। फिर शक्रेन्द्र के पास से निकल कर वे तीर्थङ्कर भगवान् के जन्मनगर में आते हैं। वहाँ आकर नगर के चौराहों पर, राजमार्गों पर यावत् छोटे बड़े सभी रास्तें पर शक्रेन्द्र की आज्ञानुसार उद्घोषणा करते हुए कहते हैं कि अहो! भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव और देवियां! आप सब सुनें-आप में से कोई देव या देवी तीर्थङ्कर भगवान् और उनकी माता का किसी भी प्रकार से बुरा चिन्तन करेगा तो उसका मस्तक ताड़वृक्ष की मञ्जरी के समान सैकड़ों टुकड़े करके उड़ा दिया जायगा।' ऐसी उद्घोषणा करके वे आभियोगिक देव शक्रेन्द्र के पास आकर उनको सूचित करते हैं कि हे स्वामिन्! हमने आपकी आज्ञानुसार तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म नगर में उद्घोषणा कर दी है ॥३६॥

तए णं ते बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणिया देवा भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करेंति, करित्ता जेणेव णंदीसर दीवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अट्ठाहियाओ महामहिमाओ करेंति, करित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगया ॥ ३७ ॥

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल चौबीस तीर्थङ्कर हुए थे। इनके नाम इस प्रकार हैं—१ ऋषभ-। २ अजितनाथ। ३ सम्भवनाथ। ४ अभिनन्दन। ५ सुमति-। ६ पद्मप्रभ। ७ सुपार्श्वनाथ। ८ चन्द्रप्रभ। ९ सुविधिनाथ, रा नाम पुष्पदन्त। १० शीतलनाथ। ११ श्रेयांसनाथ। १२ सुपूज्य। १३ विमलनाथ। १४ अनन्तनाथ। १५ धर्मनाथ। १६ तिनाथ। १७ कुंथुनाथ। १८ अरनाथ। १९ मल्लिनाथ। २० सुव्रत स्वामी। २१ नमिनाथ। २२ नेमिनाथ। २३ पार्श्वनाथ। वर्द्धमान स्वामी, दूसरा नाम महावीर स्वामी। ये चौबीस र्थङ्कर हुए हैं।

(आगामी चौवीसी)

भरतक्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी के चौवीस तीर्थङ्करों के म गिनाते हुए कहा गया है:—

जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगामिस्साए उस्सप्पिणीए उव्वीसं तित्थयरा भविस्संति। तंजहा—

महापउमे सूरदेवे, सुपासे य सयंपभे।
सव्वाणुभूई अरहा, देवस्सुए य होक्खइ ॥१॥
उदए पेढालपुत्ते य, पोट्टिले सयकित्ति य।
मुणिसुव्वए य अरहा, सव्वभावविऊ जिणे ।२।
अममे णिक्कसाए य णिप्पुलाए य णिम्ममे
चित्तउत्ते समाही य, आगामिस्सेण होक्खइ ।३।

संवरे जसोधरे अणियट्टी य विजए विमलेति य ।
देवोववाए अरहा, अणंतविजए इय ॥४॥
एएं वुत्ता चउव्वीसं, भरहे वासम्मि केवली ।
आगामिस्सेण होक्खंति, धम्मतित्थस्स देसगा ॥५॥

—समवायांग सूत्र समवाय १५६

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में चौबीस तीर्थङ्कर होंगे। उनके नाम इस प्रकार होंगे —१ महापद्म । २ सूर्य देव । ३ सुपार्श्व । ४ स्वयंप्रभ । ५ सर्वानुभूति । ६ देवश्रुत । ७ उदय । ८ पेढालपुत्र । ९ पोट्टिल । १० शतकीर्ति । ११ मुनिसुव्रत । १२ अमम । १३ निष्कषाय । १४ निष्पुलाक । १५ निर्मम । १६ चित्रगुप्त । १७ समाधि । १८ संवर १९ यशोधर २० अनिवर्तिक । २१ विजय । २२ विमल । २३ देवोपपात २४ अनन्तविजय ।

ये धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले धर्मोपदेशक चौबीस तीर्थङ्कर इस भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में होवेंगे ।

(ऐरवतक्षेत्र के तीर्थंकर)

ऐरवत क्षेत्र की वर्त्तमान चौवीसी के तीर्थङ्करों के नाम गिनाते हुए कहा है:—

जंबुद्दीवे दीवे एरवए वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसं तित्थयरा होत्था तंजहा—

चंदाणणं सुचंदं अग्गिसेणं च णंदिसेणं च ।
इसिदिण्णं वव्हारि वंदिमो सोमचंदं च ॥१॥

वंदामि जुत्तिसेणं अजियसेणं तहेव सिवसेणं ।
बुद्धं च देवसम्मं सययं णिक्खित्त सत्थं च ।२।
असंजलं जिणवसहं वंदे य अणंतयं अमियणाणीं ।
उवसंतं च धुयरयं वंदे खलु गुत्तिसेणं च ॥३॥
अइपासं च सुपासं देवेसरवंदियं च मरुदेवं ।
णिव्वाण गयं च धरं, खीणदुहं सामकोट्ठं च ॥४॥
जियरागमग्गिसेणं वंदे खीणरायमग्गिउत्तं च ।
वोक्कसिय पिज्जदोसं वारिसेणं गयं सिद्धिं ॥५॥

—समवायांग सूत्र समवाय १५९

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के ऐरवतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल बीस तीर्थङ्कर हुए थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ चन्द्रा- २ सुचन्द्र। ३ अग्निसेन। ४ नन्दीसेन। ५ ऋषिदिण्ण दत्त)। ६ व्रतधारी ७ सोमचन्द्र को हम वन्दना करते हैं। क्तसेन (अपरनाम दीर्घबाहु या दीर्घसेन) ९ अजित सेन रनाम शतायु) १० शिवसेन (अपरनाम सत्यसेन) ११ देवशर्मा (अपरनाम श्रेयांस) इनको हम सदा वन्दना हैं।

१३ असंज्वलन। १४ जिनवृषभ (अपरनाम स्वयंजल) अमितज्ञानी यानी सर्वज्ञ अनन्तक (अपरनाम सिंहसेन) पशान्त और कर्मरज से रहित गुप्तिसेन को हम वन्दना हैं।

१७ अति पार्श्व। १८ सुपार्श्व। १९ देवेश्वरों द्वारा वन्दित व २० निर्वाण को प्राप्त धर। २१ दुःखों का विनाश करने

वाले श्याम कोष्ठ। २२ राग द्वेष के विजेता अग्निसेन (अपरनाम महासेन)। २३ रागद्वेष का क्षय करके सिद्धिगति को प्राप्त हुए वारिसेन। इन चौवीस तीर्थङ्करों को मैं वन्दना करता हूँ।

ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी के चौवीस तीर्थङ्करों के नाम—

जंबुद्दीवे एरवए वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए चउव्वीसं तित्थयरा भविस्संति। तंजहा—

सुमंगले य सिद्धत्थे, णिव्वाणे य महाजसे।
धम्मज्झए य अरहा आगमिस्साण होक्खइ ॥१॥
सिरिचंदे पुप्फकेऊ, महाचंदे य केवली।
सुयसागरे य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ॥२॥
सिद्धत्थे पुण्णघोसे य, महाघोसे य केवली।
सच्चसेणे य अरहा आगमिस्साण होक्खइ ॥३॥
सूरसेणे य अरहा, महासेणे य केवली।
सव्वाणंदे य अरहा, देवउत्ते य होक्खइ ॥४॥
सुपासे सुव्वए अरहा, अरहे य सुकोसले।
अरहा अणंतविजए आगमिस्सेण होक्खइ ॥५॥
विमले उत्तरे अरहा, अरहा य महाबले।
देवाणंदे य अरहा, आगमिस्सेण होक्खइ ॥६॥
एए वुत्ता चउव्वीसं, एरवयम्मि केवली।
आगमिस्साण होक्खंति, धम्म तित्थस्स देसगा ॥७॥

—समवायांग सूत्र समवाय १५९

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सपि काल में चौवोस तीर्थङ्कर होंगे। उनके नाम इस प्रकार होंगे- सुमङ्गल। २ सिद्धार्थ अथवा अर्थ सिद्ध। ३ निर्वाण। ४ महाय ५ धर्मध्वज। ६ श्रीचन्द्र। ७ पुष्पकेतु। ८ महाचन्द्र। ९ श्रुतसाग १० सिद्धार्थ अथवा अर्थसिद्ध। ११ पूर्णघोप। १२ महाघो १३ सत्यसेन। १४ सूर्यसेन। १५ महासेन। १६ सर्वानन्द। देवपुत्र। १८ सुव्रत अथवा सुपार्श्व। १९ सुकौशल। २० अ विजय। २१ विमल २२ उत्तर। २३ महाबल। २४ देवानन्द।

धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले और धर्मोपदेशक चौवोस तीर्थङ्कर ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल होवेंगे।

७-महावीर के सार्थक नाम

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तीन नाम किस प्रकार हुए ? सो बताते हुए कहा है:—

समणे भगवं महावीरे कासवगोत्ते । तस्स णं इमे तिण्णि णामधेज्जा एवं आहिज्जंति—अम्मा पिउसंतिए वद्धमाणे । सहसमुदिए (सह सम्मइए) समणे । भीमं भयभेरवं उरालं अचेलयं (अचलयं) परीसहं सहइ त्ति कट्टु देवेहिं से णामं कयं समणे भगवं महावीरे ।

—आचारांग अ० २४

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी काश्यप गोत्र के थे। उनके तीन नाम इस प्रकार कहे जाते हैं:—

(१) वर्द्धमान—माता पिता ने उनका नाम वद्धमाण-वर्द्धमान रखा था।

(२) श्रमण—उनमें सहज स्वाभाविक रूप से अनेक गुण विद्यमान थे अतः स्वाभाविक गुणसमुदाय के कारण उनका दूसरा नाम समण-श्रमण हुआ।

(३) महावीर—अचेलकता अर्थात् नग्नता का कठोर परीषह-जिसे बड़े बड़े शक्तिशाली वीर पुरुष भी सहन नहीं कर सकते हैं, उसको तथा दूसरे भी भयंकर और कठोर परीषहों को भगवान् ने

समभाव पूर्वक सहन किया था। इस कारण से देवों ने उनका नाम "महावीर" रखा।

विवेचन-प्रश्न-परीषह किसे कहते हैं?

उत्तर—आपत्ति आने पर भी संयम में स्थिर रहने के लिए तथा कर्मों की निर्जरा के लिए जो शारीरिक और मानसिक कष्ट साधु साध्वियों को सहने चाहिए उन्हें परीषह कहते हैं। वे बाईस हैं—१ क्षुधा परीषह-भूख का परीषह। संयम की मर्यादानुसार निर्दोष आहार न मिलने पर साधु साध्वियों को भूख का कष्ट सहना चाहिए किन्तु संयम मर्यादा का उल्लंघन न करना चाहिए।

(२) पिपासा परीषह—प्यास का परीषह।

(३) शीत परीषह—ठण्ड का परीषह।

(४) उष्ण परीषह—गरमी का परीषह।

(५) दंशमशक परीषह—डांस और मच्छरों का तथा खट-मल, चींटी, जूं आदि का परीषह।

(६) अचेल परीषह—शास्त्र मर्यादा के अनुसार परिमाण से अधिक वस्त्र न रखने से तथा आवश्यक वस्त्र न मिलने से होने वाला कष्ट।

(७) अरति परीषह—मन में अरति अर्थात उदासी से होने वाला कष्ट। संयम मार्ग में कठिनाइयों के आने पर उसमें मन न लगे और उसके प्रति अरति-अरुचि उत्पन्न हो तो धैर्य पूर्वक उसमें मन लगाते हुए अरति को दूर करना चाहिए।

स्त्री परीषह— संसार में स्त्रियाँ पुरुषों के लिए महती आसक्ति का कारण हैं। यदि वे अव्रत सेवन के लिए साधु से प्रार्थना करें तो भी साधु अपने ब्रह्मचर्य व्रत में दृढ़ रहें। विचलित न हो यह स्त्री परीषह है।

(६) चर्या परीषह—ग्रामानुग्राम विचरते हुए विहार सम्ब न्धी कष्ट ।

(१०) निषद्या परीषह—स्वाध्याय आदि करने की भूमि में किसी प्रकार का उपद्रव होने पर होने वाला कष्ट निषद्या परीषह है।

(११) शय्या परीषह—रहने के स्थान अथवा संस्तारक (बिछौना) की प्रतिकूलता से होने वाला कष्ट ।

(१२) आक्रोश परीषह—किसी के द्वारा धमकाया जाने पर या फटकारा जाने पर दुर्वचनों से होने वाला कष्ट ।

(१३) वधपरीषह—लकड़ी आदि से पीटा जाने पर होने वाला कष्ट ।

(१४) याचना परीषह—भिक्षा मांगने से होने वाला कष्ट ।

(१५) अलाभ परीषह—इच्छित वस्तु के न मिलने पर होने वाला कष्ट ।

(१६) रोग परीषह—रोग के कारण होने वाला कष्ट ।

(१७) तृणस्पर्श परीषह—सोने के लिये बिछाये हुए तिनकों पर (सूखे घास आदि पर) सोते समय या मार्ग में चलते समय तृण आदि पैर में चुभ जाने से होने वाला कष्ट ।

(१८) जल्ल परीषह—शरीर वस्त्र आदि में चाहे जितना मैल लग जाय किन्तु उद्वेग को प्राप्त न होना तथा स्नान की इच्छा न करना जल्ल (मल) परीषह कहलाता है ।

(१९) सत्कार पुरस्कार परीषह—जनता द्वारा मान पूजा होने पर हर्षित न होते हुए समभाव रखना । गर्व न करना । मान पूजा के अभाव में खिन्न न होना सत्कार पुरस्कार परीषह है । (यह अनुकूल परीषह है) ।

(२०) प्रज्ञा परीषह—अपने आप विचार करके किसी कार्य करना प्रज्ञा है। प्रज्ञा होने पर उसका गर्व न करना प्रज्ञा परीषह है।

(२१) अज्ञान परीषह—अज्ञान के कारण होने वाला कष्ट।

(२२) दर्शन परीषह—सम्यग् दर्शन के कारण होने वाला परीषह अर्थात दूसरे मत वालों की ऋद्धि तथा आडम्बर को देख कर भी अपने मत में दृढ़ रहना दर्शन परीषह है।

प्रश्न—'वर्द्धमान' शब्द का शब्दार्थ (व्युत्पत्त्यर्थ) क्या है?

उत्तर—वर्धत्ते इति वर्द्धमान; अर्थात जो वृद्धि को प्राप्त हो जिससे धन धान्यादि की वृद्धि हो उसे 'वर्द्धमान' कहते हैं।

जब भगवान महावीर स्वामी का जीव त्रिशला रानी की कुक्षि में आया तब उनके पिता राजा सिद्धार्थ के राज्य की, लक्ष्मी की, धन धान्य की एवं कुटुम्ब परिवार की सबकी वृद्धि हुई थी। इसलिए जब बालक का जन्म हुआ तब माता पिता ने उसका नाम 'वर्द्धमान' रखा था।

प्रश्न—'महावीर' शब्द का शब्दार्थ (व्युत्पत्त्यर्थ) क्या है?

उत्तर—

विदारयति यत्कर्म, तपसा च विराजते।
तपोवीर्येण युक्तश्च, तस्माद् वीर इति स्मृतः॥

अर्थात—जो आठ कर्मों का विदारण करे, तप के द्वारा शोभित हो एवं तप और वीर्य से युक्त हो उसे वीर कहते हैं। महांश्चासौ वीर इति महावीर' जो महान वीर हो उसे महावीर कहते हैं।

प्रश्न—'श्रमण' शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर—'श्रमु तपसि खेदे च' इस धातु से श्रमण शब्द बना है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है:—

श्राम्यति तपस्यति इति श्रमणः। श्रममानयति पञ्चेन्द्रियाणि मनश्चेति श्रमणः (स्था० ४ उ० ४)

श्राम्यति संसार विषय खिन्नो भवति तपस्यतीति वा श्रमणः।' (धर्म० अधि० २)

अर्थ—जो तपस्या में रत रहे एवं तपस्या द्वारा शरीर और कर्मों को कृश करे उसे श्रमण कहते हैं।

जो पाँच इन्द्रिय और मन को वश में रखे उसे श्रमण कहते हैं।

जो सांसारिक विषय वासना से खिन्न हो अर्थात् जो सांसारिक विषयवासना से विरक्त हो, उनका त्यागी हो तथा तपस्या में रत हो उसे श्रमण कहते हैं।
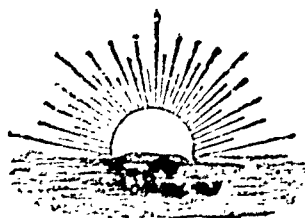
८—शरीर-सम्पदा
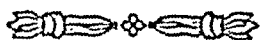
श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शरीर की विशिष्टता बताते हुए कहा गया है:—

सत्तहत्थुस्सेहे, समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहणाराय संघयणे अणुलोमवाउवेगे कंकग्गहणे, कवोयपरिणामे सउणिपोसपिट्ठंतरोरुपरिणए पउमुप्पलगंधसरिसणिस्सासे सुरभिवयणे छवि णिरायंके उत्तमपसत्थअइसेयणिरुवमपले जल्लमल्लकलंकसेयरयदोसवज्जियसरीरे णिरुवलेवे छाया उज्जोइयंगमंगे ॥

—औपपातिक समवसरणाधिकार

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का शरीर सात हाथ ऊंचा, समचतुरस्र संस्थान में संस्थित, वज्रऋषभ नाराच संहनन युक्त, और अनुलोम-अनुकूल वायुवेग वाला था। कंकग्रहण कंकपक्षी के समान आहार का ग्रहण करने वाला और कपोत परिणाम था अर्थात जिस प्रकार कपोतपक्षी के शरीर में कंकर का भी पाचन हो जाता है, उसी प्रकार उनके शरीर में भी रूक्ष आदि सभी प्रकार के आहार का पाचन हो जाता था। पीठ, अन्तर और ऊरु-जंघा पक्षी के समान थी एवं पक्षी के समान उनका शरीर भाग (गुदा प्रदेश) अशुचि के लेप से रहित रहता था। उनके श्वास में कमल के समान सुगन्ध आती थी एवं उनका मुख सुरभित गन्धित था। कान्ति युक्त एवं निरातंक-रोगरहित था। उत्तम

प्रशस्त अतिशय वाला था। उनके शरीर का रक्त और मांस दूध के समान श्वेत था। जल्ल-पसीना, मैल, कलङ्क, रज-धूल से रहित था। सब दोषों से रहित था। निरुपलेप-लेप रहित था। उनके शरीर के समस्त अङ्ग उपाङ्ग कान्तियुक्त और उद्योत-प्रकाशयुक्त थे।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शरीर का शिखानख (चोटी से लेकर पैरों की अङ्गुलियों के नखों तक का) वर्णन करते हुए यों कहा गया है।

घणणिचयसुबद्धलक्खणुण्णयकूडागारणिभपिंडियग्गसिरए सामलिबोंडघणणिचयफोडियमिउविसयपसत्थसुहुमलक्खण-सुगंध-सुंदर-भुयमोयगभिंगणीलकज्जलपहिट्ठभमरगणणिद्धणिउरंबणिचियकुंचिय--पयाहिणावत्त-मुद्धसिरए, दाडिमपुप्फपगास-तवणिज्ज-सिरिस - णिम्मलसुणिद्धकेसंत-केसभूमि, घणणिचियछत्तागारुत्तमंगदेसे णिव्वणसमलट्ठमट्ठ-चंदद्धसमणिलाडे, उडुवइ-पडिपुण्ण-सोमवयणे, अल्लीणपमाणजुत्तसवणे सुसवणे, पीणमंसल--कवोलदेसभाए, आणामियचावरुइलकिण्हब्भराइतणुकसिणणिद्धभमुहे, अवदलियपुंडरियणयणे, कोयासिय-धवलपत्तलच्छे, गरुलायतउज्जुतुङ्गणासे, उवचिय-सिलप्पवालबिंबफल-सण्णिभाधरोट्ठे, पंडुर-ससिसयलविमल णिम्मल-संख-गोखीर-फेणकुंद-दगरयमुणालियाधवलदंतसेढी अखंडदंते, अफुडियदंते, अविरलदंते, सुणिद्धदंते, सुजायदंते, एगदंतसेढीविव अणेग-

दंते, हुयवहणिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततलतालुजीहे, अव-
ट्ठियसुविभत्तचित्तमसुमंसल-संठियपसत्थ-सद्दूलविउलहणुए,
चउरंगुलसुप्पमाणे कंबुवर-सरिसगीवे, वरमहिसवराहसिंह-
सद्दूल-उसभ-णागवर-पडिपुण्णविउलखंधे, जुगसण्णिभ-
पीणरइय-पीवरपउट्ठे सुसंठिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-घण-थिर-
सुबद्धसंधि, पुरवरफलिहवट्टियभूए, भुयईसर विउलभोग-
आदाण-फलिह-उच्छूढ-दीहबाहू, रत्ततलोवइय-मउयमंसल-
सुजाय-लक्खणपसत्थअच्छिद्दजालपाणि, पीवरकोमलवरं-
गुलि-आयंब-तंब-तलिण-सुइरुइलणिद्धणखे चंदपाणिलेहे,
सूरपाणिलेहे, संखपाणिलेहे, चक्कपाणिलेहे, दीसासोत्थियप-
पाणिलेहे, चंदसूर-संख-चक्क-दिसा-सोत्थिय-पाणिलेहे,
कणग-सिलातलुज्जल-पसत्थ-समतल उवचियविच्छिण्ण-
पिहुलवच्छे, सिरिवच्छंकियवच्छे, अकरंडुय-कणगरुइय-
णिम्मल-सुजाय-णिरुवहय-देहधारी, अट्ठसहस्सपडिपुण्ण-
वरपुरिसलक्खणधरे सण्णयपासे, संगयपासे, सुंदरपासे,
सुजायपासे, मियमाइयपीण-रइयपासे, उज्जुयसमसहिय-
जच्चतणु-कसिण-णिद्ध-आइज्ज-लडहरमणिज्ज रोमराइ, झसं-
विहग-सुजाय-पीणकुच्छि, झसोयरे, सुइकरणे, पउम-वियड-
णाभि, गंगावत्तकपयाहिणावत्त-तरंग-भंगुर-रविकिरण-तरुण
बोहिय अकोसायंतपउमगंभीर-वियडणाभि, साहय-सोणंद-
मुसल-दप्पण णिकरिय, वरकणगच्छरु-सरिस-वरवइर-वलिय-

९—शिविकाएँ
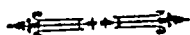
वर्तमान चौवीसी के चौबीस तीर्थङ्करों की शिविकाओं के नाम इस प्रकार हैं:—

एएसिं चउव्वीसाए तित्थयराणं चउव्वीसं सीया होत्था तंजहा—

सीया सुदंसणा सुप्पभा य सिद्धत्थ सुप्पसिद्धा य ।
विजया य वेजयंती, जयंती अपराजिया चेव ॥१॥
अरुणप्पभ चंदप्पभ सूरप्पभ अग्गि सप्पभा चेव ।
विमला य पंचवण्णा, सागरदत्ता य णागदत्ता य ॥२॥
अभयकर णिव्वुइकरा मणोरमा तह मणोहरा चेव ।
देवकुरू उत्तरकुरा, विसाल चंदप्पभा सीया ॥३॥
एयाओ सीयाओ, सव्वेसिं चेव जिणवरिंदाणं ।
सव्वजगवच्छलाणं सव्वोउगसुभाए छायाए ॥४॥
पुव्विं ओक्खित्ता माणुस्सेहिं साहट्टु रोमकूवेहिं ।
पच्छा वहंति सीयं, असुरिंदसुरिंदणागिंदा ॥५॥
चलचवलकुंडलधरा, सच्छंद विउव्वियाभरणधारी ।
सुरअसुरवंदियाणं, वहंति सीयं जिणंदाणं ॥६॥

पुरओ वहंति देवा, णागा पुण दाहिणम्मि पासम्मि ।
पच्चत्थिमेण असुरा, गरुला पुण उत्तरे पासे ॥७॥
—समवायांग सूत्र समवाय १५७

अर्थ—इन चौवीस तीर्थङ्करों की चौवीस शिबिकाएँ-पालकियाँ थीं। उनके नाम इस प्रकार थे-१ सुदर्शना। २ सुप्रभा। ३ सिद्धार्था। ४ सुपतिट्ठा। ५ विजया। ६ वैजयंती। ७ जयंती। ८ अपराजिता। ९ अरुणप्रभा। १० चन्द्रप्रभा ११ सूर्यप्रभा। १२ अग्निप्रभा। १३ विमला। १४ पंचवर्णा। १५ सागरदत्ता। १६ नागदत्ता। १७ अभयंकरा। १८ निर्वृतिकरा। १९ मनोरमा। २० मनोहरा। २१ देवकुरा। २२ उत्तरकुरा। २३ विशाला २४ चन्द्रप्रभा।

सम्पूर्ण जगत के हितकारी सब तीर्थङ्करों को ये सब ऋतुओं में सुख देने वाली, छाया युक्त यानी आतापना रहित पालखियां थीं।

जिनके रोम-रोम हर्षित हो रहे हैं, ऐसे मनुष्य इन पालखियों को पहले उठाते हैं और पीछे असुरेन्द्र सुरेन्द्र और नागेन्द्र उठाते हैं।

चञ्चल और चपल कुण्डलों को धारण करने वाले और इच्छापूर्वक वैक्रिय किये हुए आभूषणों को धारण करने वाले देवेन्द्र और असुरेन्द्र सुर और असुरों द्वारा वन्दित जिनेश्वरों की पालखियों को उठाते हैं।

देव आगे चलते हैं। नागकुमार देव दाहिनी तरफ चलते हैं। असुरकुमार जाति के देव पीछे की तरफ चलते हैं और सुवर्णकुमारादि देव उत्तर की तरफ यानी बाईं तरफ चलते हैं।
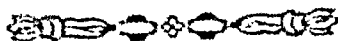
१०—आदिनाथ की दीक्षा

तए णं उसभे अरहा कोसलिए णयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे एवं जाव णिगच्छइ जहा उववाइए जाव आउलबोलबहुलं णभं करंते विणीयाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिगच्छइ आसियसंमज्जिय सित्तसुइगपुप्फोवयारकलियं सिद्धत्थवणविउलरायमग्गं करेमाणे हयगयरहपहकरेण पाइक्कचडकरेण य मंदं मंदं उद्धतरेणुयं करेमाणे करेमाणे जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीअं ठावेइ, ठावइत्ता सीआओ पचोरुहइ पचोरुहित्ता सयमेवाभरणमल्लालंकारं ओमुअइ ओमुअइत्ता सयमेव * चउहिं मुट्ठीहिं लोअं करेइ लोअं करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं उग्गाणं भोगाणं राइण्णाणं खत्तियाणं चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं एगदेवदूसमादाय मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ —जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति दूसरा वक्षस्कार

---

* टिप्पणी—तीर्थङ्कर भगवान् पंचमुष्टि लोच करते हैं किन्तु भगवान् ऋषभदेव का चतुर्मुष्टि (चार मुष्टि) लोच कहा गया है

अर्थ—तब हजारों लोगों के द्वारा देखे जाते हुए भगवान् ऋषभदेव राज महल से निकले। उववाई (औपपातिक) सूत्र में राजा कोणिक के निकलने का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है वैसा ही यहाँ भी समझ लेना चाहिए। यावत् जनकोलाहल से आकाश को गुंजाते हुए विनीता राजधानी के बीचोबीच होते हुए निकले और सिद्धार्थ वन की ओर जाने लगे। सिद्धार्थवन उद्यान के रास्ते को गन्धोदक छिड़क कर सुगन्धित बनाया था। कचरा निकाल कर साफ और पवित्र किया था और पुष्प डाल कर विशेष सुगन्धित और सुशोभित किया था। ऐसे राजमार्ग में चलते हुए सिद्धार्थवन उद्यान में श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे आये। वहाँ अशोक वृक्ष के नीचे आकर शिविका (पालखी) को नीचे रख दिया। फिर भगवान् ऋषभ देव पालखी से नीचे उतरे। नीचे उतर कर स्वयमेव अपने हाथ से वस्त्र आभूषण आदि सब उतार दिये। फिर चार मुष्टि से अपने केशों का लोच किया। लोच करके

इसका खुलासा टीकाकार ने इस प्रकार किया है कि—भगवान् ऋषभदेव ने एक मुष्टि से दाढ़ी मूंछ के केशों का लोच किया था फिर सिर के केशों का तीन मुष्टि लोच किया, चौथी मुष्टि के केश बाकी रहे। वे भगवान् के कंधों पर लटकते हुए और वायु के द्वारा हिलते हुए अत्यन्त शोभित हो रहे थे। यह देख कर शक्रेन्द्र ने भगवान् से प्रार्थना की कि हे भगवन्! ये केश बड़े ही सुन्दर लग रहे हैं। इसलिये इन्हें रहने दीजिये। शक्रेन्द्र की प्रार्थना को स्वीकार कर भगवान् ने उन केशों को रहने दिया इस लिए भगवान् ऋषभदेव का लोच चतुर्मुष्टि लोच ही हुआ।

किंवदन्ती है कि भगवान् के सिर पर जो केश रहे थे वे और [illegible] थे। इसलिए वे चोटी कहलाये। उसी [illegible] अपने सिर पर चोटी रखते हैं। [illegible]

चौविहार बेला के तप से उत्तराषाढा नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग मिलने पर उग्रकुल भोगकुल राजन्यकुल के चार हजार पुरुषों के साथ एक देवदूष्य वस्त्र सहित गृहस्थवास छोड़ कर अनगार धर्म स्वीकार किया अर्थात दीक्षा अङ्गीकार की।

(दीक्षा की तैयारी)

भगवान ऋषभदेव की दीक्षा की तैयारी का वर्णन करते हुए विस्तार से कहा है:—

तए णं उसभे अरहा कोसलिए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसइ, वसित्ता तेवट्ठिपुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसइ, तेवट्ठिपुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसमाणे लेहाइआओ गणियप्पहाणाओ सउणरुअपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ, चोसट्ठिं महिलागुणे, सिप्पसयं च कम्माणं तिण्णि वि पयाहिआए उवदिसइ, उवदिसित्ता पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ, अभिसिंचित्त * तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसइ, वसित्त

---

* टिप्पणी:—यहाँ मूल पाठ में पहले यह कहा गया है कि "भगवान् ऋषभदेव बीस लाख पूर्व तक कुमारवास (राज्याभिषेक कि बिना) में रहे और त्रेसठ लाख पूर्व महाराज पद में रहे" इसके आ के पाठ में जब दोनों की सम्मिलित संख्या बतलाई है तब यह कहा गया कि—'भगवान् ऋषभदेव तयासी लाख पूर्व तक महाराज पद में रहे।'

जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स णवमी पक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे चइत्ता हिरण्णं चइत्ता सुवण्णं चइत्ता कोसं चइत्ता कोट्ठागारं चइत्ता बलं चइत्ता वाहणं चइत्ता पुरं चइत्ता अंतेउरं चइत्ता। विउलधण-कणग-रयण-मणिमोत्तिअ-संख-सिलप्पवालरत्तरयणसंतसारसावइज्जं विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाणं दाइआणं परिभाइत्ता सुदंसणाए सीआए सदेवमणुआसुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे संखिअचक्किअ-णंगलिय-मुहमंगलिअ-पूसमाणव-वद्धमाणग-आइक्खग-लंख-मंख-घंटिअ-गणेहिं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगलाहिं सस्सिरीआहिं हिययगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं कण्णमणणिव्वुइकराहिं अपुणरुत्ताहिं

इन दोनों पाठों को देखने से यह शंका हो सकती है कि ये दो पाठ विरोधी कैसे आये? किन्तु ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि टीकाकार ने इसका समाधान दिया है कि 'भाविनि भूतवदुपचारः' अर्थात् 'भावी में भूत का उपचार किया जा सकता है' इस नियम के अनुसार भगवान् ऋषभदेव महाराजा होने वाले थे इसलिए उनकी कुमारावस्था को महाराजावस्थामें गिन ली गई है। इस अपेक्षा से 'तयासी लाख पूर्व तक' महाराजावस्था कही गई है।

अतः मूल पाठ में पूर्वापर किसी प्रकार का विरोध नहीं है। दोनों पाठ सुसंगत हैं।

१४—दस स्वप्नों का फल

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा देखे गये दस स्वप्न और उनका फल—

समणे भगवं महावीरे छउमत्थकालियाए* अंतिम-राइयंसि इमे दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तंजहा-

---

*श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ये दस स्वप्न किस रात्रि में देखे थे ? इस विषय में कुछ की ऐसी मान्यता है कि—

छउमत्थकालियाए अंतिमराइयंसि ।

अर्थात्—छद्मस्थ अवस्था की अन्तिमरात्रि में ये स्वप्न देखे थे अर्थात् जिस रात्रि में भगवान् ने ये स्वप्न देखे थे उसके दूसरे ही दिन भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया था ।

कुछ की मान्यता ऐसी है कि 'अंतिम राइयंसि' इमे दस रात्रि के अन्तिम भाग में । यहाँ पर किसी 'रात्रिविशेष' का निर्देश नहीं किया गया है । इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि स्वप्न देखने के कितने समय बाद भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था । इस विषय में भिन्न भिन्न प्रतियों में जो अर्थ दिये गये हैं, वे ज्यों के त्यों यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

'समणे भगवं महावीरे छउमत्थकालियाए अंतिम राइयंसि इमे दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।'

(१) अर्थ—ज्यां रे श्रमण भगवन्त महावीर छद्मस्थपणा मां हवां त्यारे तेओ एक रात्रि ना छेल्ला प्रहर मां आ दस स्वप्नों जोइने जाग्या.

१ एगं च णं महाघोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुमिणे पराजियं पासित्ता णं पडिबुद्धे । २ एगं च महं सुक्किल-पक्खगं पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

(भगवती शतक १६ उद्देशा ६, जैन साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट अहमदाबाद द्वारा विक्रम संवत् १९९० में प्रकाशित गुजराती अनुवाद चतुर्थखण्ड पृष्ठ १९)

(२) श्रमण भगवन्त श्री महावीर देव छद्मस्थपणा नी रात्रिना अन्तिम भागे एह दस वक्ष्यमाण मोटा स्वप्न देखी ने जागे ।

(हस्त लिखित भगवती ५७० पानों वाली का टब्बा अर्थ पृष्ठ ३८ । सेठिया जैन ग्रन्थालय बीकानेर की प्रति ।

(३) 'अंतिम राइयंसि' रात्रेरन्तिमे भागे ।

अर्थात् रात्रि के अन्तिम भाग में ।

(भगवती सूत्र, आगमोदय समिति द्वारा विक्रम संवत् १९७७ प्रकाशित संस्कृत टीका पृष्ठ ७१०)

(४) 'अंतिम राइयंसि' अन्तिमा अन्तिम भागरूपा अव-यवे समुदायोपचारात् । सा चासौ रात्रिका च इति अन्तिमरात्रिका तस्यां रात्रेरवसाने इत्यर्थः" ।

अर्थात्-रात्रि के अन्तिम भाग में ।

ठाणाङ्ग सूत्र ठाणा १० सूत्र ७५० पृष्ठ ५०१ आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित संस्कृत टीका ।

'अंतिमराइया' अन्तिमरात्रिका । अन्तिमा अन्तिमभाग-रूपा अवयवे समुदायोपचारात् सा चासौ रात्रिका चान्तिम रात्रिका-रात्रेरवसाने इत्यर्थः ।

३ एगं च महं चित्तविचित्तपक्खगं पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे । ४ एगं च णं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे । ५ एगं च णं महं सेयं गोवग्गं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे । ६ एगं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं सुमिणे पासित्ता णं

अर्थात्-अन्तिम भागरूप जो रात्रि वह अन्तिम रात्रि है । यह रात्रि के एक भाग को 'रात्रि' शब्द से कहा गया है । इस प्रकार अन्ति भागरूप रात्रि अर्थ निकलता है अर्थात् रात्रि के अन्तिम भाग में ।

(अभिधान राजेन्द्र कोष प्रथम भाग पृष्ठ १०१)

(६) 'अन्तिमराइ' रात्रि नो छेडो-छेल्लो भाग-पिछ रात ।

(शता-पं० मुनि श्री रत्नचन्द्रजी महाराज कृत अर्द्ध माग कोष प्रथम भाग पृष्ठ ३४)

(७) 'अतिम राइया' अर्थात् श्रमण भगवन्त श्री महा छद्मस्थाए छेल्ली रात्रि ना अन्ते ।

(विक्रम संवत् १८८४ में हस्त लिखित सवालखी भग शतक १६ उ० ६)

(८) श्री श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी छद्मस्थ अवस्था अन्तिम रात्रि में दस स्वप्नों को देख कर जागृत हुए ।

(पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० कृत हिन्दी अनुवाद भग सूत्र पृष्ठ २२२४ तथा ठाणांग सूत्र पृष्ठ ८६४)

भिन्न भिन्न प्रतियों का अर्थ ऊपर लिखा गया है, । तत्वं विमृश्यम् ।

डिबुद्धे । ७ एगं च णं महासागरं उम्मीवीइसहस्सकलियं
गाहिं तिण्णं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे । ८ एगं च णं
इं दिणयरं तेयसा जलंतं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।
एगं च णं महं हरिवेरुलियवण्णाभे णं नियगेणमंतेणं
माणुस्सुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवेढियं परिवेढियं
मिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे । १० एगं च महं मंदरे
व्वए मंदरचूलियाओ उवरिं सीहासणवरगयमत्ताणं सुमिणे
ासित्ता णं पडिबुद्धे ।

१ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं घोररूवदित-
रं तालपिसायं सुमिणे पराजियं पासित्ता णं पडिबुद्धे ।
ण्णं समणेणं भगवया महावीरेणं मोहणिज्जे कम्मे मूलाओ
ग्घाइए । २ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं
सुक्किलपक्खगं पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे
ण्णं समणे भगवं महावीरे सुक्कज्झाणोवगए विहरइ ।
३ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं चित्तविचित्तपक्खगं
ंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तण्णं समणे
भगवं महावीरे ससमयपरसमयं चित्तविचित्तं दुवालसंगं
णिपिडगं आघवेइ पण्णवेइ परूवेइ निदंसेइ उवदंसेइ
ंजहा-आयारं जाव दिट्ठिवायं । ४ जण्णं समणे भगवं
महावीरे एगं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुमिणे पासित्ता
णं पडिबुद्धे तण्णं समणे भगवं महावीरे दुविहं धम्मं पण्ण-

वेइ तंजहा–अगारधम्मं च अणगारधम्मं च । ५ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सेयं गोवग्गं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स चाउवण्णाइण्णे संघे तंजहा–समणा समणीओ सावया सावियाओ । ६ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तण्णं समणे भगवं महावीरे चउव्विहे देवे पण्णवेइ तंजहा–भवणवासी वाणमंतरा जोइसवासी विमाणवासी । ७ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सागरं उम्मीवीइसहस्सकलियं भुयाहिं तिण्णं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तण्णं समणेणं भगवया महावीरेणं अणाईए अणवदग्गे दीहमद्धे चाउरंतसंसारकंतारे तिण्णे । ८ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं तेयसा जलंतं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे । ९ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं हरिवेरुलियवण्णाभेणं नियगेणमंतेणं माणुसुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवेढियपरिवेढियं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स सदेवमणुयासुरे लोगे उराला कित्तिवण्णसद्दसिलोगा परिगुव्वंति इइ खलु समणे भगवं महावीरे इइ । १० जण्णं समणे भगवं महावीरे मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं

सीहासणवरगयमत्ताणं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तण्णं समणे भगवं महावीरे सदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झगए केवलिपण्णत्तं धम्मं आघवेइ पण्णवेइ परूवेइ दंसेइ निदंसेइ उवदंसेइ ।

—ठाणांगसूत्र दसवाँ ठाणा

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी छद्मस्थ अवस्था की अन्तिम रात्रि में इन दस महास्वप्नों को देख कर जागृत हुए। वे इस प्रकार हैं–१ पहले स्वप्न में एक महा भयंकर रूप वाले ताड़ वृक्ष के समान पिशाच को पराजित किया हुआ देखा २—दूसरे स्वप्न में एक महान् सफेद पंख वाले पुंस्कोकिल अर्थात् पुरुष जाति के कोयल को देखा। साधारणतया कोयल के पंख काले होते हैं किन्तु भगवान् ने स्वप्न में सफेद पंख वाले कोयल को देखा। ३–तीसरे स्वप्न में एक महान् विचित्र रंगों के पुंस्कोकिल अर्थात् पुरुष जाति के कोयल को देखा। ४–चौथे स्वप्न में एक महान् सर्वरत्नमय मालायुगल अर्थात् दो मालाओं को देखा। ५–पांचवें स्वप्न में एक विशाल सफेद गायों के झुण्ड को देखा। ६–छट्ठे स्वप्न में चारों तरफ से खिले हुए फूलों वाले एक विशाल पद्म सरोवर को देखा। सातवें स्वप्न में हजारों लहरों और कल्लोलों से युक्त एक महान् सागर को भुजाओं से तिर कर पार पहुँचे ऐसा देखा। ८–आठवें स्वप्न में तेज से जाज्वल्यमान सूर्य को देखा। ९–नवमें स्वप्न में मानुष्योत्तर पर्वत को नील वैडूर्य मणि के समान अपने अन्तर्भाग को चारों तरफ से आवेष्टित परिवेष्टित देखा। १० दसवें स्वप्न में सुमेरु पर्वत की मंदर चूलिका नाम की चोटी पर श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे हुए अपने आपको देखा। ये दस स्वप्न देख कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जागृत हुए।

पांच महाव्रतों की पच्चीस भावनाएँ कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—१ ईर्यासमिति को देख कर यतनापूर्वक गमनागमनादि क्रियाएँ करना। २ मनगुप्ति-मन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना। ३ वचनगुप्ति-वचन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना। ४ आलोकित भाजन भोजन-सदा उपयोग पूर्वक देख कर चौड़े मुख वाले पात्र में आहार पानी ग्रहण करना और प्रकाश वाले स्थान में बैठ कर भोजन करना। ५ आदान भंडमात्र निक्षेपणा समिति-यतना पूर्वक भंडोपकरण लेना और रखना। प्राणातिपात विरमण रूप पहले महाव्रत की ये पांच भावनाएँ हैं। ६ अनुवीचिभाषणता-विचार कर बोलना। ७ क्रोधविवेक अर्थात् क्रोध का त्याग करना, क्रोध युक्त वचन न बोलना। ८ लोभविवेक अर्थात् लोभ का त्याग करना-लोभयुक्त वचन न बोलना। ९ भयविवेक अर्थात् भय का त्याग करना-भय के वश असत्य वचन न बोलना। १० हास्यविवेक अर्थात् हंसी का त्याग करना-हंसी के वश असत्य वचन न बोलना। मृषावाद विरमण रूप दूसरे महाव्रत की ये पाँच भावनाएँ हैं। ११ अवग्रह अनुज्ञापनता अर्थात् मकान आदि में ठहरने के लिए उसके स्वामी की आज्ञा लेना। १२ अवग्रहसीमा परिज्ञान-उपाश्रय की सीमा खोल कर आज्ञा लेना। १३ स्वयमेव अवग्रह अनुग्रहणता-उपाश्रय की सीमा को स्वयं जान कर उसमें ठहरना १४ साधर्मी साधुओं को उपाश्रय की सीमा बतला कर उसे भोगना। १५ गोचरी द्वारा लाये हुए आहार पानी को गुरु महाराज को या अपने से बड़े साधु को दिखला कर भोगना। अदत्तादानविरमण रूप तीसरे महाव्रत की ये पांच भावनाएँ हैं। १६ स्त्री, पशु, नपुंसक से युक्त उपाश्रय का त्याग करना। अर्थात् स्त्री-पशु-नपुंसक-रहित उपाश्रय में ठहरना। १७ स्त्रीकथा न करना। १८ स्त्रियों के ... नाक, आँख, कान आदि अंगों को विकार दृष्टि से न

६—समभाव
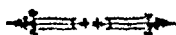
भगवान् ऋषभदेव के समभाव का वर्णन सूत्रकारों ने इस किया है:—

उसभे णं अरहा कोसलिए संवच्छरं साहियं चीवरधारी [illegible]त्था, तेणं परं अचेलए।

जप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए मुण्डे भवित्ता [illegible] अगाराओ अणगारियं पव्वइए तप्पभिइं च णं उसभे [अ]रहा कोसलिए णिच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उव-[स]ग्गा उप्पज्जंति तंजहा-दिव्वा वा जाव पडिलोमा वा [अ]णुलोमा वा। तत्थ पडिलोमा वेत्तेण वा जाव कसेण वा [का]ए आउट्टेज्जा। अणुलोमा वा वंदेज्ज वा पज्जुवासेज्ज [वा] ते सव्वे सम्मं सहइ जाव अहियासेइ।

—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति

अर्थ—भगवान् ऋषभदेव स्वामी एक वर्ष से कुछ अधिक [(ए]क वर्ष और एक महीना) समय तक वस्त्रधारी रहे अर्थात् [र]हे कन्धे पर देवदूष्य वस्त्र रहा तत्पश्चात् वे वस्त्ररहित बने।

जब से भगवान् ऋषभदेव स्वामी द्रव्य और भाव से [मुण्डि]त बने अर्थात् दीक्षा अङ्गीकार की तब से काया के ममत्व

१७—ज्ञानियों की प्रतिष्ठा
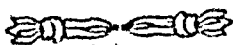
केवलज्ञानी महापुरुषों की प्रतिष्ठा (आधारभूत अहिंसा) का वर्णन करते हैं:—

जे य बुद्धा अइक्कंता, जे य बुद्धा अणागया।
संति तेसिं पइट्ठाणं, भूयाणं जगई जहा॥

सूयगडांगसूत्र ११/३५

अर्थ—भूतकाल में जो अनन्त तीर्थङ्कर हो चुके हैं, उन्होंने भावमार्ग मोक्ष का उपदेश दिया है तथा आगामी काल में जो अनन्त तीर्थङ्कर होंगे वे भी इसी भावमार्ग (मोक्ष) का उपदेश करेंगे। तथा वर्तमान काल में जो संख्यात तीर्थङ्कर हैं वे भी इसी मार्ग का उपदेश करते हैं। यह भावमार्ग ही अतीत अनागत तथा वर्तमान तीर्थङ्करों का आधार है। अथवा मोक्ष को शान्ति कहते हैं। वह मोक्ष सभी तीर्थङ्करों का आधार है परन्तु भावमार्ग के बिना उसकी प्राप्ति नहीं होती है इसलिए सभी तीर्थङ्करों ने भावमार्ग का उपदेश दिया है और तदनुसार स्वयं आचरण भी किया है। जिस प्रकार सब जीवों का आधार पृथ्वी है उसी प्रकार सब तीर्थङ्करों का आधार शान्ति (अहिंसा) है।

१८ छद्मस्थ और केवली का लक्षण

सत्तहिं ठाणेहिं छउमत्थं जाणेज्जा तंजहा—पाणे अइवाएत्ता भवइ, मुसं वइत्ता, भवइ अदिण्णमाइत्ता भवइ, सद्दफरिसरसरूवगंधे आसाइत्ता भवइ, पूयासक्कारमणुवूहेत्ता भवइ, इमं सावज्जं ति पण्णवेत्ता पडिसेवित्ता भवइ, णो जहावाई तहाकारी या वि भवइ।

सत्तहिं ठाणेहिं केवली जाणेज्जा तंजहा—णो पाणे अइवाइत्ता भवइ जाव जहावाई तहाकारी या वि भवइ।

—ठाणांग ठाणा ७

अर्थ—सात बातों से यह जाना जा सकता है कि अमुक व्यक्ति छद्मस्थ है अर्थात् केवली नहीं है—

१—छद्मस्थ प्राणातिपात करने वाला होता है अर्थात् उससे जानते अजानते कभी न कभी हिंसा हो जाती है। चारित्र मोहनीय के कारण वह चारित्र का पूर्ण पालन नहीं कर पाता है।

२—छद्मस्थ से कभी न कभी असत्य वचन बोला जा सकता है।

३—छद्मस्थ से अदत्तादान का सेवन भी हो जाता है।

४—छद्मस्थ जीव शब्द, रूप गन्ध, रस, स्पर्श का राग पूर्वक सेवन कर सकता है।

५—छद्मस्थ वस्त्रादि के द्वारा अपनी पूजा सत्कार का अनुमोदन करता है अर्थात् अपनी पूजा सत्कार होने पर वह प्रसन्न होता है।

६—छद्मस्थ आधाकर्म आदि को सावद्य जानते हुए और कहते हुए भी वह उनका सेवन करने वाला हो जाता है।

७—छद्मस्थ साधारणतया कहता कुछ है और करता कुछ है।

इन सात बातों से छद्मस्थ पहचाना जा सकता है।

ऊपर कहे हुए छद्मस्थ पहिचानने के सात बोलों से विपरीत सात बोलों से केवली पहिचाने जा सकते हैं। केवली हिंसा आदि नहीं करते हैं यावत् वे जैसा कहते हैं वैसा ही करते हैं।

विवेचन—ऊपर छद्मस्थ पहचानने के जो सात बोल कहे गये हैं, वे समुच्चय रूप से हैं। सभी छद्मस्थ एक सरीखे नहीं होते हैं। कोई कोई छद्मस्थ इस प्रकार के दोषों का सेवन कर लेते हैं। तीर्थङ्कर भगवान् को जब तक केवलज्ञान नहीं होता, तब तक वे भी छद्मस्थ ही कहलाते हैं; किन्तु वे किसी भी प्रकार के दोष का सेवन कदापि नहीं करते हैं।

केवली भगवान् के तो चारित्र मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय हो जाता है। इसलिए वे मूल गुण और उत्तर गुण सम्बन्धी दोषों का सेवन नहीं करते हैं। उनका संयम सर्वथा निरतिचार होता है।

१८—आदिजिन को कैवल्य

भ० आदिजिन को केवलज्ञान की प्राप्ति कैसे कब कहाँ और किस अवस्था में हुई ? यह बताते हुए शास्त्रकार कहते हैं:—

से णं भगवं वासावासवज्जं हेमंत-गिम्हासु गामे एगराईए णगरे पंचराइए ववगयहाससोगअरइरइभयपरित्तासे णिम्ममे णिरहंकारे लहुभूए अगंथे वासीतच्छणे अदुट्ठे चंदणाणुलेवणे अरत्ते लेट्ठुम्मि कंचणम्मि अ समे इहलोएपरलोए अपडिबद्धे जीवियमरणे णिरवकंखे संसारपारगामी कम्मसंघणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए विहरइ।

तस्स णं भगवंतस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स एगे वाससहस्से विइक्कंते समाणे पुरिमतालस्स णगरस्स बहिया सगडमुहंसि उज्जाणंसि, णग्गोहवरपायवस्स अहे, झाणंतरियाए वट्टमाणस्स फग्गुणबहुलस्स एक्कारसीए पुव्वण्हकाल समयंसि, अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं, उत्तरासाढ णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं, अणुत्तरेणं णाणेणं, अणुत्तरेणं दंसणेणं, अणुत्तरेणं चरित्तेणं, अणुत्तरेणं तवेणं, बलेणं वीरिएणं आलएणं विहारेणं भावणाए खंतीए गुत्तीए मुत्तीए तुट्ठीए अज्जवेणं मद्दवेणं लाघवेणं सुचरिय सोवचिय

[illegible]ज्झाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स, अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे, जिणे जाए केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी णेरइय-तिरियणरामरस्स लोगस्स पज्जवे जाणइ पासइ तंजहा— आगइं गइं ठिइं उववायं भुत्तं कडं पडिसेवियं आवीकम्मं रहोकम्मं तं तं कालं मणवयकायजोगे एवमाई जीवाण वि सव्वभावे अजीवाण वि सव्वभावे मोक्खमग्गस्स विसुद्ध-तराए भावे जाणमाणे पासमाणे, एस खलु मोक्खमग्गे मम अण्णेसिं च जीवाणं हियसुहणिस्सेयसकरे सव्वदुक्खवि-मोक्खणे परमसुहसमाणणे भविस्सइ ॥

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र दूसरा वक्षस्कार

अर्थ—भगवान् ऋषभदेव स्वामी वर्षा काल (चतुर्मास) को छोड़ कर शेष हेमन्त ऋतु (शीतकाल) और ग्रीष्म ऋतु (उष्णकाल) में, इन आठ मास में छोटे गांव में एक रात्रि और नगर में पांच रात्रि से अधिक नहीं ठहरते थे। वे भगवान् हास्य, शोक, अरति, रति, भय और परित्राम से रहित थे। वे ममत्व रहित थे, अहंकार रहित थे, लघुभूत थे, वे [illegible] बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से रहित थे। यदि कोई उन्हें वसूले से (कुल्हाड़ी से) छेदन करे तो भी उस पर द्वेष नहीं करते थे। और यदि कोई उनके चन्दन लगा कर पूजा सत्कार करे तो उस पर राग भी नहीं करते थे। सोना और मिट्टी दोनों में समान भाव रखते थे। इस लोक और परलोक में वे प्रतिबन्ध रहित थे। अर्थात् उन्हें इस मनुष्य भव सम्बन्धी सुखों की और परभव [illegible]

स्वर्गलोक के सुखों की वांच्छा नहीं थी। वे जीवन और मरण की वांच्छा रहीत थे अर्थात् इन्द्र नरेन्द्रादि द्वारा पूजा प्राप्त होने पर वे अधिक जीने की इच्छा नहीं करते थे और भयंकर से भयंकर परीषह उपसर्ग आने पर वे शीघ्र मर जाने की इच्छा नहीं करते थे। वे संसार पारगामी थे। वे कर्मसमूह को नष्ट करने में निरन्तर उद्योग करते हुए विचरते थे।

इस प्रकार विचरण करते हुए भगवान् के एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये। एक समय भगवान् पुरिमताल नगर के बाहर शकट मुख उद्यान में वट वृक्ष के नीचे शुक्लध्यान ध्याते हुए बैठे थे चौविहार तेले की तपस्या थी उस समय फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन के पूर्व भाग में उतरापाढा नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर प्रधान ज्ञान दर्शन चारित्र तप बल वीर्य, निर्दोष वसति विहार, उत्तम भावना, क्षमा, गुप्ति, निर्लोभता, तुष्टि-इच्छा निवृत्ति आर्जव-(सरलता) मार्दव-(कोमलता) लाघव, सुचरित-(सदाचार) एवं सोपचित-(पुष्ट) निर्वाण मार्ग में अपनी आत्मा को भावित करते हुए भगवान् ऋषभदेव को अनन्त अनुत्तर व्याघात रहित, आवरण रहित, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न हुए। तब वे पूर्ण रूप से राग द्वेष के विजेता हुए, केवल ज्ञानी, सर्वज्ञ सर्वदर्शी हुए। वे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देवलोक इन चारों गतियों के सब पर्यायों को जानने देखने लगे। वे सब जीवों की आगति, गति, स्थिति, उपपात, भुक्त, (खाया हुआ), कृत (किया हुआ), प्रतिसेवित (आचरण किया हुआ), प्रकट

िये हुए कार्य और गुप्त एकान्त में छुपा कर किये हुए कार्य को जानने देखने लगे। इसी प्रकार वे मन वचन काया के ओं को, जीवों के सब भावों को और अजीवों के सब भावों को और अजीवों के रूपादि सब धर्मों को तथा मोक्षमार्ग के विशुद्ध ावों को जानने देखने लगे कि यह मोक्षमार्ग मुझे और अन्य सब वों को हितकारी, सुखकारी, निःश्रेयसकारी,-कल्याणकारी, सब खों से छुड़ाने वाला और निर्वाण सुख को देने वाला होगा।

२०—देवेन्द्रों का आगमन
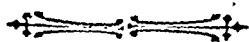
तीन कारणों से देवेन्द्र मनुष्यलोक में आते हैं:—

तिहिं ठाणेहिं देविंदा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति तंजहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

—स्थानांग सूत्र ठाणा ३

अर्थ—तीन कारणों से देवेन्द्र मनुष्य लोक में शीघ्र आते हैं। जैसे कि-जब आरहंत (तीर्थङ्कर) भगवान् जन्म लेते हैं तब जब अरिहन्त भगवान् दीक्षा लेते हैं तब और जब अरिहन्त भगवान् को केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न होता है तब देवकृत महोत्सव मनाते समय देवेन्द्र इस मनुष्यलोक में आते हैं।

विवेचन-प्रश्न-अरिहन्त किसे कहते हैं ?

उत्तर-कर्म आठ हैं-१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयुष्य, ६ नाम, ७ गोत्र, ८ अन्तराय इन आठ कर्मों में से ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार कर्मों को घाती कर्म कहते हैं और बाकी चार (वेदनीय, आयुष्य, नाम गोत्र) कर्मों को अघाती कर्म कहते हैं। चार सर्वघाती कर्म रूप शत्रुओं का नाश करने वाले महापुरु

अरिहन्त कहलाते हैं। ये देवेन्द्रकृत अष्ट महाप्रातिहार्य से युक्त होते हैं। केवलज्ञान और केवलदर्शन से तीन लोक को और तीन काल की बात को जानते देखते हैं। ऐसे हितोपदेशक सर्वज्ञ भगवान् अरिहन्त कहलाते हैं।

घाती कर्म रूप शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाले महापुरुष वन्दना नमस्कार पूजा और सत्कार के योग्य होते हैं तथा सिद्ध होने के योग्य होते हैं इसलिए भी ये अरहन्त कहलाते हैं।
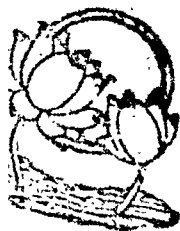
२१-अतिशय

तीर्थङ्कर भगवान् के चौतीस अतिशयों का वर्णन करते हुए कहा गया है:—

चोतीसं बुद्धाइसेसा पण्णत्ता तंजहा-(१) अवट्ठिए केसमंसुरोमणहे (२) णिरामया णिरुवलेवा गायलट्ठी (३) गोक्खीरपंडुरे मंससोणिए, (४) पउमुप्पलगंधिए उस्सासणिस्सासे (५) पच्छण्णे आहारणीहारे अदिस्से मंसचक्खुणा (६) आगासगयं चक्कं (७) आगासगयं छत्तं (८) आगासगयाओ सेयवरचामराओ (६) आगास-फालियामयं सपायपीढं सीहासणं (१०) आगासगओ कुडभी-सहस्स परिमंडियाभिरामो इंदज्झओ पुरओ गच्छइ (११) जत्थ जत्थ वि य णं अरहंता भगवंतो—चिट्ठंति वा णिसीयंति वा तत्थ तत्थ वि य णं तक्खणादेव संछण्णपत्त-पुप्फपल्लवसमाउलो सच्छत्तो सज्झओ सघंटो सपडागो असोगवरपायवो अभिसंजायइ। (१२) ईसिं पिट्ठओ मउडठाणम्मि तेयमंडलं अभिसंजायइ अंधकारे वि य णं दस दिसाओ पभासेइ। (१३) बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे। (१४) अहोसिरा कंटया जायंति। (१५) उऊविवरीया

सुहफासा भवंति (१६) सीयलेणं सुहफासेणं सुरभिणा मारुएणं जोयणपरिमंडलं सव्वओ समंता संपमज्जिज्जइ। (१७) जुत्तफुसिएणं मेहेण य णिहयरयरेणुयं किज्जइ। (१८) जलथलयभासुरपभूएणं विंटट्ठाइणा दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं जाणुस्सेहप्पमाणमित्ते पुप्फोवयारे किज्जइ। (१९) अमणुण्णाणं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं अवकरिसो भवइ। (२०) मणुण्णाणं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं पाउब्भावो भवइ। (२१) पच्चाहरओ वि य णं हिययगमणीओ जोयण नीहारो सरो। (२२) भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ। (२३) सा वि य णं अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं दुप्पयचउप्पयमियपसुपक्खिसरीसिवाणं अप्पणो हियसिवसुहयभासत्ताए परिणमइ। (२४) पुव्वबद्धवेरा वि य णं देवासुरनागसुवण्णजक्खरक्खसकिंणरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगा अरहओ पायमूले पसंतचित्तमाणसा धम्मं णिसामंति। (२५) अण्णउत्थियपावयणिया वि य णमागया वंदंति। (२६) आगया समाणा अरहओ पायमूले णिप्पलिवयणा हवंति। (२७) जओ जओ वि य णं अरहंतो भगवंतो विहरंति तओ तओ

भवइ । (३३) दुब्भिक्खं ण भवइ । (३४) पुव्वुप्पण्णा वि य णं उप्पाइया वाही खिप्पामेव उवसमंति ।

—समवायांग ३४ वाँ सम०

अर्थ—तीर्थङ्कर भगवान् के चौतीस अतिशय कहे गये हैं—१तीर्थङ्कर भगवान् के मस्तक और दाढ़ी मूछ के केश बढ़ते नहीं हैं। उनके शरीर के रोम और नख भी नहीं बढ़ते हैं। सदा प्रमाणोपेत अवस्थित रहते हैं। २ तीर्थंकर भगवान् का शरीर सदा नीरोग रहता है और मल आदि अशुचि का लेप नहीं लगता है। ३ उनके शरीर का मांस और रक्त गाय के दूध की तरह सफेद होते हैं। ४ उनके श्वासोच्छ्वास में पद्म और नील कमल की तथा पद्मक और उत्पलकुष्ट गन्ध द्रव्य विशेष की सुगन्ध आती है। ५ उनका आहार और नीहार—मलमूत्रादि प्रच्छन्न होता है, चर्म चक्षु वालों को दिखाई नहीं देता है। ६ तीर्थंकर भगवान् के आगे आकाश में धर्मचक्र रहता है। ७ उनके ऊपर तीन छत्र रहते हैं। ८ उनके तरफ आकाश में श्रेष्ठ सफेद चंवर विंजाते रहते हैं। ९ तीर्थंकर भगवान् के लिए आकाश के समान स्वच्छ स्फटिक मणियों का बना हुआ पाद पीठिका सहित सिंहासन होता है। १० आकाश में बहुत ऊंचा छोटी छोटी हजारों पताकाओं से परिमण्डित इन्द्रध्वज तीर्थंकर भगवान् के आगे आगे चलता है। ११ जहाँ जहाँ पर तीर्थंकर भगवान् खड़े रहते हैं या बैठते हैं वहाँ वहाँ पर उसी समय पत्र पुष्प और पल्लवों से सुशोभित छत्र ध्वजा घण्टा और पताका सहित अशोक वृक्ष प्रकट होकर उन पर छाया करता है। १२ तीर्थंकर भगवान् के कुछ पीछे मस्तक के पास अत्यन्त देदीप्यमान भामण्डल रहता है वह अन्धकार में भी दसों दिशाओं को प्रकाशित करता है। १३ जहाँ भगवान् विचरते हैं वहाँ का भूमि-

तीर्थंकर भगवान् के चरणों में आकर अपना वैर भूल जाते।
२५ तीर्थंकर भगवान् के पास आये हुए अन्यतीर्थिक भी उन
वन्दना करते हैं। २६ तीर्थंकर भगवान् के चरणों में आते ही
अन्यतीर्थिक निरुत्तर हो जाते हैं। २७ जहाँ जहाँ तीर्थंकर भगवा
विचरते हैं, वहाँ वहाँ पर पचीस योजन यानी एक सौ कोस
अन्दर ईति नहीं होती है अर्थात् चूहे आदि जीवों से धान्य
उपद्रव नहीं होता है। २८ मारी- जनसंहारक प्लेग आदि रोग
होते हैं। २९-स्वचक्र का भय यानी अपने राज्य की सेना से उप
द्रव नहीं होता है। ३०-परचक्र का भय यानी दूसरे राजा की सेन
का उपद्रव नहीं होता है। ३१-अतिवृष्टि अर्थात् आवश्यकता
अधिक वर्षा नहीं होती है। ३२-अनावृष्टि अर्थात् वर्षा का अभा
नहीं होता है। ३३-दुर्भिक्ष-दुष्काल नहीं होता है। ३४-पहले
उत्पन्न हुए हुए उत्पात और व्याधियाँ शीघ्र ही शान्त हो जाती हैं

इन चौंतीस अतिशयों में से दूसरे से पाँचवें तक के चा
अतिशय तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म से ही होते हैं। इक्कीसवें
चौंतीसवें तक ये चौदह और भामण्डल ये पन्द्रह अतिशय घा
कर्मों के सर्वथा क्षय होने पर प्रकट होते हैं। शेष पन्द्रह अतिश
देवकृत होते हैं।

२२—दस अनुत्तर

केवलिस्स णं दस अणुत्तरा पण्णत्ता तंजहा-अणुत्तरे णाणे अणुत्तरे दंसणे अणुत्तरे चरित्ते, अणुत्तरे तवे अणुत्तरे वीरिए, अणुत्तरा खंती, अणुत्तरा मुत्ती, अणुत्तरे अज्जवे अणुत्तरे मद्दवे अणुत्तरे लाघवे।—ठाणांग सूत्र दसवां ठाणा

अर्थ—दूसरी कोई वस्तु जिससे बढ़ कर न हो अर्थात् जो सब से बढ़ कर हो उसे अनुत्तर कहते हैं। केवली भगवान् में दस बातें अनुत्तर (प्रधान-सर्व श्रेष्ठ) होती हैं। वे ये हैं—

(१) अनुत्तर ज्ञान-ज्ञानावरणीय कर्म के सर्वथा क्षय से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। केवलज्ञान से बढ़कर दूसरा कोई ज्ञान नहीं है। इसलिए केवली भगवान् का ज्ञान अनुत्तर कहलाता है।

(२) अनुत्तर दर्शन-दर्शनावरणीय और दर्शनमोहनीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय से केवल दर्शन उत्पन्न होता है।

(३) अनुत्तर चारित्र-चारित्रमोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय से यह उत्पन्न होता है।

(४) अनुत्तर तप-केवली भगवान् के शुक्लध्यानादि रूप अनुत्तर तप होता है।

(५) अनुत्तर वीर्य-वीर्यान्तराय कर्म के सर्वथा क्षय से अनन्त वीर्य होता है।

से किं तं सिद्धकेवलणाणं ? सिद्धकेवलणाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा—अणंतरसिद्धकेवलणाणं च परंपरसिद्ध-केवलणाणं च ।

से किं तं अणंतरसिद्धकेवलणाणं ? अणंतरसिद्धकेवल-णाणं पण्णरसविहं पण्णत्तं, तंजहा—तित्थसिद्धा, अतित्थ-सिद्धा, तित्थयरसिद्धा, अतित्थयरसिद्धा, सयंबुद्धसिद्धा, पत्तेयबुद्धसिद्धा, बुद्धबोहियसिद्धा, इत्थिलिंगसिद्धा, पुरिस-लिंगसिद्धा, णपुंसगलिंगसिद्धा, सलिंगसिद्धा, अण्णलिंग-सिद्धा, गिहिलिंगसिद्धा, एगसिद्धा, अणेगसिद्धा । से तं अणंतरसिद्धकेवलणाणं ।

से किं तं परंपरसिद्धकेवलणाणं ? परंपरसिद्धकेवलणाणं अणेगविहं पण्णत्तं, तंजहा—अपढमसमयसिद्धा, दुसमय-सिद्धा तिसमयसिद्धा चउसमयसिद्धा जाव दससमयसिद्धा संखिज्जसमयसिद्धा असंखिज्जसमयसिद्धा अणंतसमयसिद्धा से तं परंपरसिद्धकेवलणाणं । से तं सिद्धकेवलणाणं ।

तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तंजहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ । तत्थ दव्वओ णं केवलणाणी सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ । खित्तओ णं केवलणाणी सव्वं खित्तं जाणइ पासइ । कालओ णं केवलणाणी सव्वं कालं जाणइ पासइ । भावओ णं केवलणाणी सव्वे भावे जाणइ पासइ ।

अर्थ—(१) प्रश्न—भगवन् ! क्या केवली भगवान् इन्द्रियं
द्वारा जानते देखते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! केवली भगवान् इन्द्रियों द्वारा नहीं
जानते, नहीं देखते हैं।

(२) प्रश्न—अहो भगवन् ! केवली भगवान् इन्द्रियों द्वार
क्यों नहीं जानते देखते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! केवली भगवान् पूर्व दिशा में मि
(परिमित) भी जानते देखते हैं और अमित (अपरिमित)
जानते देखते हैं यावत् केवली भगवान् का दर्शन निवृत्त है। इ
लिए वे इन्द्रियों के द्वारा जानते नहीं देखते नहीं हैं।

**१—केवलणाणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं णाणी
अण्णाणी ? गोयमा ! णाणी, णो अण्णाणी, णियम
एगणाणी केवलणाणी ॥**

—भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशक

अर्थ—प्रश्न—भगवन् ! केवलज्ञान लब्धि वाले जीव क्या
ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! केवलज्ञान लब्धि वाले जीव ज्ञानी
किन्तु अज्ञानी नहीं हैं। वे नियमा (अवश्य) एक केवलज्ञा
वाले हैं।

केवलणाणस्स णं भंते केवइए विसए पण्णत्ते
गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा—दव्वओ
खेत्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओ केवलणाणी सव्व

भाई जाणइ पासइ, एवं जाव भावओ ॥

—भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशक २

अर्थ—प्रश्न—भगवन् ! केवलज्ञान का विषय कितना है ?

उत्तर—हे गौतम ! केवलज्ञान का विषय चार प्रकार का [कह]ा गया है द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से [केव]ली सब द्रव्यों को जानता देखता है। इसी प्रकार क्षेत्र से [सभ]ी क्षेत्र को-सम्पूर्ण लोकालोक को, काल से सब काल को [अर्थ]ात भूत भविष्यत वर्तमान तीनों काल को और भाव से सब [भाव]ों को अर्थात सब द्रव्यों की पर्यायों को केवलज्ञानी जानते [देख]ते हैं।

१—केवली णं भंते ! छउमत्थं जाणइ पासइ ? हंता [जाण]इ पासइ।

२—जहा णं भंते ! केवली छउमत्थं जाणइ पासइ तहा [स]िद्धे वि छउमत्थं जाणइ पासइ ? हंता जाणइ पासइ।

भगवती सूत्र शतक १४।१०

अर्थ—(१) प्रश्न—भगवन् ! क्या केवलज्ञानी छद्मस्थ को [जानते] देखते हैं ?

उत्तर—हाँ, गौतम ! जानते देखते हैं।

(२) प्रश्न—भगवन् ! जैसे केवलज्ञानी छद्मस्थ को जानते [देखते] हैं, वैसे ही क्या सिद्ध भगवान भी छद्मस्थ को जानते [देखते] हैं ?

उत्तर—हाँ, गौतम ! जानते देखते हैं।

२४—गण और गणधर

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के नौ गण:—

समणस्स भगवओ महावीरस्स णव गणा होत्थ
तंजहा—गोदासगणे उत्तरवलिस्सहगणे उद्देहगणे चारणग
उड्डवाइयगणे विस्सवाइयगणे कामिड्डियगणे माणवग
कोडियगणे। —ठाणांग ठाणा

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के नौ गण थे
यथा—

(१) गोदासगण—श्री भद्रबाहु स्वामी के प्रथम शि
गोदास थे। इन्हीं के नाम से पहला गण प्रचलित हुआ।

(२) उत्तर वलिस्सह गण—स्थविर महागिरि के प्र
शिष्य का नाम उत्तरवलिस्सह था। इनके नाम से दूसरा ग
प्रचलित हुआ।

(३) उद्देह गण, (४) चारणगण, (५) उद्वातिगण, (
विस्सवातिगण, (७) कामड्ढिगण, (८) मानवगण और (
कोटिकगण।

भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के आठ गण और आठ गण
के नाम:—

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठ गणा अ

गणहरा होत्था तंजहा—सुभे, अज्जघोसे, वसिट्ठे, बंभयारी, सोमे, सिरिधरे, वीरिए, भद्दजसे ॥ —ठाणांग ठाणा ८

अर्थ—पुरुषों में आदरणीय भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के आठ गण थे और आठ ही गणधर थे। यथा—शुभ, आर्यघोष, वशिष्ठ, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीर्य और भद्रयश।

विवेचन—गण और गणधर किसे कहते हैं?

उत्तर—एक ही प्रकार के आचार वाले साधुओं के समुदाय को गण कहते हैं और उस गण को धारण करने वाले को गणधर कहते हैं। भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के आठ गण थे, इसलिए आठ ही गणधर थे।

भगवान् पार्श्वनाथ के आठ गण और आठ गणधरों के नाम गिनाते हुए सूत्रकार कहते हैं:—

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था तंजहा—

सुभे य अज्जघोसे य, वसिट्ठे बंभयारी य।

इस प्रकार थे—१ शुभ, २ शुभघोष, ३ वशिष्ठ, ४ ब्रह्मचारी, ५ सोम, ६ श्रीधर, ७ वीरभद्र और ८ यश।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गण तथा ग्यारह गणधरों के नाम:—

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स एक्कारस गणा एक्कारस गणहरा होत्था। तंजहा—इंदभूई, अग्गिभूई, वाउभूई, वियत्ते सोहम्मे मंडिए मोरपुत्ते अकंपिए अयलभाए मेअज्जे पभासे।

—समवायांग सूत्र ११ वाँ समवाय

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गण और ग्यारह गणधर थे। वे इस प्रकार थे—१ इन्द्रभुति, २ अग्निभूति, ३ वायुभूति, ४ व्यक्त स्वामी, ५ सुधर्मास्वामी ६ मण्डितपुत्र, ७ मौर्यपुत्र, ८ अकम्पितस्वामी, ९ अचलभ्राता १० मेतार्यस्वामी ११ प्रभासस्वामी।

२५—तीर्थंकरों की सम्पदा

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स चउरासी गणा गणहरा होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स उसभसेण पामोक्खाओ चउरासीइं समणसाहस्सीओ * उक्कोसिया समणसंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स बंभी सुंदरी पामोक्खाओ तिण्णि अज्जियासयसाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स सेज्जंसपामोक्खाओ तिण्णि समणोवासगसयसाहस्सीओ पंच य साहस्सीओ उक्कोसिया समणोवासगसंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स सुभद्दापामोक्खाओ पंच समणोवासियासयसाहस्सीओ चउप्पण्णं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियासंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसन्निवाईणं जिणो इव अवितहं वागरमाणाणं चत्तारि चउद्दसपुव्वीसहस्सा अद्धट्ठमा य सया उक्कोसिया

* टिप्पणी—यहां पर भगवान् ऋषभदेव के [illegible], आदि [illegible] की जो संख्या बताई गई है वह [illegible] है। ऋषभदेव भगवान् के साथ [illegible] [illegible] संख्या से अधिक [illegible] नहीं हुई थी।

अर्थ—भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के छह सौ ऐसे वादी मुनि थे, जो लोक में देव, मनुष्य और असुरों की सभा में वाद विवाद में किसी से भी पराजित नहीं हो सकते थे।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्तजिणसया होत्था। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्तवेउव्वियसया होत्था। —समवायांग ७०० वां सम०

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के सात सौ केवल ज्ञानी साधु थे।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के सात सौ वैक्रिय लब्धि धारी साधु थे।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसि भद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था

—समवायांग ८०० वां सम०

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समय में उत्कृष्ट आठ सौ साधु अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले थे। जिनकी स्थिति उत्तम थी और जो आगामी भद्रक थे अर्थात् वे वहाँ से चव कर आगामी भव में मोक्ष प्राप्त करेंगे।

पासस्स णं अरहओ दससयाइं जिणाणं होत्था।

—समवायांग १०० वां सम०

अर्थ—भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के एक हजार केवल ज्ञानी साधु थे।

पासस्स णं अरहओ दस अंतेवासी सयाइं कालगयाइं सव्वदुक्खप्पहीणाइं। —समवायांग १००० वां सम०

अर्थ—तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के एक [illegible] शिष्य मोक्ष गये यावत् सब दुःखों से रहित हुए।

पासस्स णं अरहओ इक्कारस सयाइं वेउव्वियाणं [illegible]सिया संपया होत्था। —समवायांग ११०० वां सम०

अर्थ—भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के ग्यारह सौ वैक्रिय [illegible] साधु थे।

पासस्स णं अरहओ तिण्णि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं [illegible]स्साइं उक्कोसिया साविआसंपया होत्था।

—समवायांग ३२७००० वां सम०

अर्थ—तीर्थंकर भगवान् श्री पार्श्वनाथ स्वामी के उत्कृष्ट [illegible] सत्ताईस हजार श्राविकाएं थीं।

भगवान् अरिष्टनेमि और भगवान् महावीर स्वामी—इन [illegible] के विशिष्ट साधु रूप सम्पदा का वर्णन करते हुए [illegible] है:—

अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स चत्तारि सया चोद्दसपुव्वीणं [illegible]णं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसन्निवाईणं जिणो [illegible] जिणसंकासाणं उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया

—ठाणांग ठाणा ४

उत्तर—हे गौतम ! इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में अवसर्पिणी काल में मेरा तीर्थ (शासन) इक्कीस हजार वर्ष चलेगा। प्रश्नः—भगवन् ! जिस प्रकार इस जंबूद्वीप के भरत में आपका तीर्थ इक्कीस हजार वर्ष तक चलेगा। इसी प्रकार जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आगामी तीर्थंकरों में से चरम तीर्थ का तीर्थ (शासन) कितने काल तक चलेगा ?

उत्तर—हे गौतम ! कौशलिक भगवान् ऋषभदेव स्वामी जितना जिनपर्याय (केवली पर्याय) कहा गया है अर्थात् हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व वर्ष तक आगामी तीर्थंकरों में चरम तीर्थङ्कर का तीर्थ (शासन) चलेगा।

(१) तित्थं भंते ! तित्थं, तित्थयरे तित्थं ? गोयमा अरहा ताव णियमं तित्थयरे, तित्थं पुण चाउवण्णाइण समणसंघो तंजहा-समणा समणीओ सावया सावियाओ।

(२) पवयणं भंते ! पवयणं, पावयणी पवयणं गोयमा ! अरहा ताव णियमं पावयणी। पवयणं पु दुवालसंगे गणिपिडगे तंजहा-आयारो जाव दिट्ठिवाओ।

—भगवती सूत्र शतक २०।

अर्थ—(१) प्रश्न—गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावी स्वामी से पूछ रहे हैं कि भगवन् ! क्या तीर्थ को तीर्थ कहते हैं तीर्थङ्कर को तीर्थ कहते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! अरिहंत तो नियमा (अवश्य) तीर्थं (तीर्थ की स्थापना करने वाले) हैं, परन्तु तीर्थ नहीं हैं। च

से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता ! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे महागोवे । —उपासकदशांग अध्य० ७

अर्थ—गोशालक हे देवानुप्रिय सद्दालपुत्र ! क्या यहाँ महा-गोप (गायों अर्थात् प्राणियों के सब से बड़े रक्षक) आये थे।

सद्दालपुत्र—हे देवानुप्रिय ! आप महागोप किसको कहते हैं।

गोशालक—हे सद्दालपुत्र ! मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को महागोप कहता हूं।

सद्दालपुत्र—हे देवानुप्रिय ! आप श्रमण भगवान् महावीर-स्वामी को महागोप किस अभिप्राय से कहते हैं ?

गोशालक—हे सद्दालपुत्र ! इस संसाररूपी विकट अटवी (वन) में कषायवश होकर प्रवचन मार्ग से भ्रष्ट होने वाले, प्रति-क्षण मरते हुए, मृग आदि डरपोक योनियां में उत्पन्न होकर हिंसक-व्याघ्र आदि से खाये जाने वाले, भाले आदि से बांधे जाने वाले कलह व्यभिचार एवं चोरी आदि करने पर नाक, काट कर अंग-हीन बनाये जाने वाले तथा अत्यन्त विकलांग किये जाने वाले, लूटे जाने वाले वहुत जीवों को धर्ममय डंडे से रक्षा करते हुए निर्वाण (मोक्ष) रूपी वाड़े में अपने हाथ से प्रवेश कराने वाले जैसे गोप-ग्वाला गायों की रक्षा करता हुआ सन्ध्या के समय स्वयं उन्हे वाड़े में पहुंचा देता है। उसी प्रकार संसारी जीवों को स्वयं निर्वाण रूपी वाड़े में पहुंचाने वाले श्रमण भगवान् महा-वीर स्वामी हैं। इस कारण से मैं उन्हें महागोप कहता हूँ॥

३—आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महासत्थवाहे ? के -णं देवाणुप्पिया ! महासत्थवाहे ? सद्दालपुत्ता ! समणे

३१—महावीर-स्तुति

भगवान् महावीर स्वामी के गुणों का वर्णन करते कहा है:—

पुच्छिस्सु णं समणा माहणा य,
अगारिणो य परतित्थिया य।
से केइ णेगंत हियधम्ममाहु,
अणेलिसं साहु समिक्खयाए ॥१॥

अर्थ—श्री सुधर्मास्वामी ने जम्बूस्वामी से कहा कि श्र
ब्राह्मण क्षत्रिय आदि तथा अन्यतीर्थिकों ने मुझ से पूछा थ
हे भगवन्! कृपा कर आप हमें बतलाइये कि केवलज्ञान से स
जान कर एकान्त रूप से कल्याणकारी अनुपम धर्म को जिसने क
है वह कौन है? ॥१॥

कहं च णाणं कहं दंसणं से,
सीलं कहं णायसुयस्स आसी।
जाणासि णं भिक्खू जहातहेणं,
अहासुतं बूहि जहा णिसंतं ॥

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्ञान दर्श
चारित्र कैसे थे? हे भगवन्! आप यह जानते हैं अतः जैसे
सुना और निश्चय किया है वह कृपया हमें बतलाइये ॥२॥

से सव्वदंसी अभिभूय णाणी,
णिरामगंधे धिइमं ठियप्पा ।
अणुत्तरे सव्व जगंसि विज्जं,
गंथा अतीते अभए अणाऊ ॥५॥

अर्थ—भगवान् महावीर स्वामी समस्त पदार्थों को
और देखने वाले सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे। वे मूल गुण और
गुण युक्त विशुद्ध चारित्र का पालन करने वाले बड़े धीर
आत्म स्वरूप में स्थित थे। भगवान् समस्त जगत में स
विद्वान् थे। वे बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थि से रहित थे
निर्भय एवं आयु रहित (वर्तमान आयु के सिवाय चारों ग
आयु से रहित) थे क्यों कि कर्मरूपी बीज के जल जाने
भव के बाद उनकी किसी भी गति में उत्पत्ति नहीं हो सकती थी

से भूइपण्णे अणिए अचारी
ओहंतरे धीर अणंतचक्खू ।
अणुत्तरं तप्पति सूरिए वा,
वइरोयणिंदेव तमं पगासे ॥६॥

अर्थ—भगवान् महावीर स्वामी भूतिप्रज्ञ (अनन्तज्ञा
प्रतिबन्धरहित-इच्छानुसार विचरने वाले, संसार सागर को
करने वाले, परीषह और उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन
वाले धीर और पूर्णज्ञानी थे। वे सूर्य के समान प्रकाश करने
थे और जिस तरह अग्नि अन्धकार को दूर कर प्रकाश कर
उसी तरह भगवान् अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर कर पदार्थों
यथार्थ स्वरूप प्रकाशित करते थे ॥६॥

एवं सिरीए उ स भूरिवरणे;
मणोरमे जोयइ अच्चिमाली ॥१३॥

अर्थ—यह पर्वतराज पृथ्वी के मध्य भाग में स्थित है। वह सूर्य के समान कान्ति वाला है। विविध वर्णों के रत्नों से सुशोभित होने से वह अनेक वर्ण वाला और विशिष्ट शोभा वाला है, इसलिए बड़ा ही मनोरम है। वह सूर्य के समान दसों दिशाओं को प्रकाशित करता रहता है ॥१३॥

सुदंसणस्सेव जसो गिरिस्स,
पवुच्चई महतो पव्वयस्स।
एतोवमे समणे णायपुत्ते,
जाइजसो दंसणणाणसीले ॥ १४ ॥

अर्थ—मेरु का दृष्टान्त वतलाकर शास्त्रकार दार्ष्टान्तिक वतलाते हैं—महान् सुमेरु पर्वत के यश का वर्णन ऊपर किया गया है। उसी प्रकार ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर स्वामी भी सब जाति वालों में श्रेष्ठ हैं। यश में समस्त यशस्वियों से उत्तम हैं ज्ञान तथा दर्शन में ज्ञान दर्शन वालों से प्रधान हैं और शील में समस्त शीलवानों में उत्तम हैं ॥१४॥

गिरिवरे से णिसहाययाणं,
रुयए व सेट्ठे वलयायताणं।
तओवमे से जगभूइपण्णे,
मुणीण मज्झे तमुदाहु पण्णे ॥१५॥

रूक्खेसु णाए जह सामली वा,
जंसि रतिं वेदयंति सुवण्णा ।
वणेसु वा णंदणमाहु सेट्ठं,
णाणेण सीलेण य भूइपण्णे ॥ १८ ॥

अर्थ—जैसे सुवर्ण (सुपर्ण) जाति के देवों का क्रीड़ास्थान शाल्मली वृक्ष सब वृक्षों में श्रेष्ठ है तथा सब वनों में नन्दन वन श्रेष्ठ है उसी तरह ज्ञान और चारित्र में भगवान् महावीर स्वामी सब से श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥

थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ,
चंदो व ताराण महाणुभावे ।
गंधेसु वा चंदणमाहु सेट्ठं,
एवं मुणीणं अपडिण्णमाहु ॥ १९ ॥

अर्थ—जैसे शब्दों में मेघ का शब्द (गर्जन) प्रधान है, नक्षत्रों में चन्द्रमा प्रधान है तथा सुगन्ध वाले पदार्थों में चन्दन प्रधान है । इसी तरह नियाणा आदि प्रतिज्ञा रहित भगवान् महावीर स्वामी सभी मुनियों में प्रधान एवं श्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥

जहा सयंभू उदहीण सेट्ठे,
नागेसु वा धरणिंदमाहु सेट्ठे ।
खोओदए वा रस वेजयंते,
तवोवहाणे मुणि वेजयंते ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे समुद्रों में स्वयम्भूरमण समुद्र, नाग जाति के देवों में धरणेन्द्र नाग देव और रसों में इक्षुरस श्रेष्ठ है । उसी

तवेसु वा उत्तम बंभचेरं,
लोगुत्तमे समणे णायपुत्ते ॥२३॥

अर्थ—जैसे दानों में अभयदान श्रेष्ठ है, सत्य में अनवद्य (जिससे किसी भी जीव को पीड़ा न हो) वचन श्रेष्ठ है और तप में ब्रह्मचर्य तप श्रेष्ठ प्रधान है, इसी तरह श्रमण भगवान् महावीर स्वामी लोक में प्रधान एवं श्रेष्ठ हैं ॥२३॥

ठिईण सेट्ठा लवसत्तमा वा,
सभा सुहम्मा व सभाण सेट्ठा ।
णिव्वाणसेट्ठा जह सव्वधम्मा,
ण णायपुत्ता परमत्थि णाणी ॥२४॥

अर्थ—जैसे सब स्थिति वालों में * लवसत्तम देव अर्थात् अनुत्तर विमान वासी देव उत्कृष्ट स्थिति वाले होने से प्रधान हैं। सभाओं में सुधर्मासभा और सब धर्मों में निर्वाण (मोक्ष) प्रधान है। इसी तरह सर्वज्ञ भगवान् महावीर स्वामी से बढ़ कर दूसरा कोई ज्ञानी नहीं है अतः वे सभी ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं ॥२४॥

पुढोवमे धुणइ विगयगेही,
ण सण्णिहिं कुव्वइ आसुपण्णे ।
तरिउं समुद्दं च महाभवोघं,
अभयंकरे वीर अणंतचक्खू ॥२५॥

* पूर्व-भव में धर्माचरण करते समय यदि सात लव उनकी आयु अधिक होती तो वे केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में अवश्य चले जाते-इसी लिए वे लवसत्तम कहे जाते हैं ।

से सव्ववायं इति वेयइत्ता,
उवट्ठिए संजम दीहरायं ॥२७॥

अर्थ—क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी और अज्ञानवादी इन सभी मतावलम्बियों के मतों को जान कर भगवान् महावीर स्वामी यावज्जीवन संयम में स्थिर रहे थे ॥२७॥

से वारिया इत्थीसराइभत्तं,
उवहाणवं दुक्खखयट्ठयाए ।
लोगं विदित्ता आरं परं च,
सव्वं पभू वारिय सव्ववारं ॥२८॥

अर्थ—अष्ट कर्मों का नाश करने के लिए भगवान् ने कामभोग, रात्रिभोजन तथा अन्य सब पापों का त्याग कर दिया था। वे सदा तप संयम में तल्लीन रहते थे। इस लोक और परलोक के स्वरूप को जान कर भगवान् ने पापों का सर्वथा त्याग कर दिया था ॥२८॥

सोच्चा य धम्मं अरहंतभासियं ।
समाहितं अट्ठपदोवसुद्धं ।
तं सद्दहाणा य जणा अणाऊ,
इंदा व देवाहिव आगमिस्संति ॥२९॥

अर्थ—अर्हन्त देव द्वारा कहे हुए युक्तिसंगत तथा शुद्ध अर्थ और पद वाले इस धर्म को सुन कर जो जीव इसमें श्रद्धा करते हैं वे मोक्ष को प्राप्त करते हैं अथवा कुछ कर्म शेप रह जाय तो देवों के अधिपति इन्द्र होते है ॥२९॥

—सूयगडांगसूत्र

जयइ जगजीवजोणी—
वियाणओ जगगुरू जगाणंदो ।
जगणाहो जगबंधू,
जयइ जगप्पियामहो भयवं ॥१॥
जयइ सुआणं पभवो,
तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।
जयइ गुरू लोगाणं,
जयइ महप्पा महावीरो ॥२॥
भद्दं सव्वजगुज्जोयगस्स,
भद्दं जिणस्स वीरस्स ।
भद्दं सुरासुरनमंसियस्स,
भद्दं धुयरयस्स ॥३॥ —नन्दीसूत्र

पर्वत पर अष्टाह्निका (आठ दिन तक) महोत्सव मनाया और शक्रेन्द्र के चार लोकपाल देवों ने चार दधिमुख पर्वतों पर अष्टाह्निका महोत्सव मनाया। ईशानेन्द्र ने उत्तर दिशा के अञ्जन पर्वत पर अष्टाह्निका महोत्सव मनाया और ईशानेन्द्र के चार लोकपालों ने चार दधिमुख पर्वतों पर अष्टाह्निका महोत्सव मनाया। चमरेन्द्र ने दक्षिण दिशा के अञ्जन पर्वत पर और उसके चार लोकपालों ने चार दधिमुख पर्वतों पर अष्टाह्निका महोत्सव मनाया। बलीन्द्र ने पश्चिम दिशा के अञ्जन पर्वत पर और उसके चार लोकपालों ने चार दधिमुख पर्वतों पर अष्टाह्निका महोत्सव मनाया। इसी प्रकार उन बहुत से भवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक देवों ने अष्टाह्निका महोत्सव मनाया। फिर वे जहाँ अपने-अपने विमान थे वहाँ आये और अपने-अपने विमानों में बैठ कर अपने-अपने भवनों में गये। वहाँ अपनी-अपनी सुधर्मा सभा में आकर माणवक चैत्य स्तम्भ के पास आये। वहाँ आकर वज्रमय गोल डिब्बे में उन दाढाओं को एवं दांतों आदि को रखा। रख कर श्रेष्ठ मालाओं से और गन्ध से उनकी पूजा की। पूजा करके वे अपने दिव्य भोग भोगते हुए रहने लगे ॥ ३३ ॥

पणयालसयसहस्सा, जोयणाणं तु आयया ।
तावइयं चेव विच्छिण्णा, तिगुणो साहिय परिरओ ॥५६॥
अट्ठ जोयण बाहल्ला, सा मज्झम्मि वियाहिया ।
परिहायंती चरिमंते, मच्छिपत्ता उ तणुयरी ॥६०॥
अज्जुणसुवण्णगमई, सा पुढवी निम्मला सहावेणं ।
उत्ताणगच्छत्तसंठिया य, भणिया जिणवरेहिं ॥६१॥
संखंककुंदसंकासा, पंडुरा णिम्मला सुहा ।
सीयाए जोयणे तत्तो, लोयंतो उ वियाहिओ ॥६२॥
जोयणस्स उ तत्थ, कोसो उवरिमो भवे ।
तस्स कोसस्स छब्भाए, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥६३॥
तत्थ सिद्धा महाभागा, लोगग्गम्मि पइट्ठिया ।
भवप्पपंचओ मुक्का, सिद्धिं वरगइं गया ॥६४॥
उस्सेहो जस्स जो होइ, भवम्मि चरिमम्मि उ ।
तिभागहीणो तत्तो य, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥६५॥
एगत्तेण साइया, अपज्जवसिया वि य ।
पुहुत्तेण अणाइया, अपज्जवसिया वि य ॥६६॥
अरूविणो जीवघणा, णाणदंसणसण्णिया ।
अउलं सुहं संपण्णा, उवमा जस्स णत्थि उ ॥६७॥
लोगेगदेसे ते सव्वे, णाणदंसणसण्णिया ।
संसारपारणित्थिण्णा, सिद्धिं वरगइं गया ॥६८॥

उत्तराध्ययन अध्ययन ३६

अर्थ—गौतमस्वामी श्रमण भगवान् महावीर से पूछते हैं कि अहो भगवन्! सिद्धस्थान कहाँ है ? सिद्ध भगवान् कहाँ रहते हैं ?

उत्तर—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी फरमाते हैं कि हे गौतम ! सर्वार्थसिद्ध विमान के ऊपर की स्तूपिका शिखर के अग्र भाग से ऊपर बारह योजन दूर ईषत्प्राग्भारा नाम की पृथ्वी (शिला) है। वह पैंतालीस लाख योजन की लम्बी चौड़ी है। उसकी परिधि (घेरा) एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनपचास योजन से कुछ अधिक है। उसके बीच में आठ योजन के विस्तार में आठ योजन की मोटी (जाड़ी) है फिर उसमें से एक एक प्रदेश की कमी होते हुए अन्त में मक्खी के पंख से भी पतली है और मोटाई में अङ्गुल के असंख्यातवें भाग जितनी मोटी (जाड़ी) है।

इस ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बारह नाम कहे गये हैं। यथा-१ ईषत्, २ ईषत्प्राग्भारा, ३ तनु, ४ तनु तन्वी, ५ सिद्धि, ६ सिद्धालय, ७ मुक्ति, ८ मुक्तालय, ९ लोकाग्र, १० लोकाग्र स्तूपिका, ११ लोकाग्र प्रतिवाहिनी, १२ सर्वप्राणभूत जीवसत्त्व सुखावहा।

वह ईषत्प्रग्भारापृथ्वी कैसी है ? इसका वर्णन किया जाता है—वह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी, शंख—चूर्ण, मृणाल (कमलतन्तु) जलप्रवाह, तुषार-(ओस बिन्दु) गोक्षीर (गाय के दूध) और मोतियों के हार के समान सफेद है। उसका आकार उल्टे किये हुए छत्र के समान है। अर्जुनसुवर्ण (सफेद सुवर्ण) मय है। वह साफ, श्लक्ष्ण (सुंहाली) स्निग्ध घृष्ट (घिसी हुई) मृष्ट (चिकनी चमकदार) नीरज (रज धूलिरहित) निर्मल (मैल रहित) निष्पङ्का (कीचड़ रहित) स्निग्ध छाया वाली, सप्रभा (प्रभा सहित) सश्रीक (शोभा सहित) सउद्योत (प्रकाश सहित) चित्त को

उत्तर—सिद्ध अलोकाकाश द्वारा रुके हुए हैं, लोक के अग्र-भाग में रहे हुए हैं और इस लोक में शरीर को छोड़ कर वहाँ जाकर सिद्ध पद को प्राप्त करते हैं।
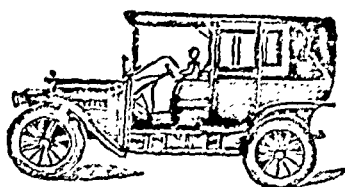
टिप्पणी—सिद्ध भगवान् प्रतिघात रहित होते हैं, इसलिए उनको रुकावट नहीं होती, किन्तु आगे अलोकाकाश होने से ऊपर जीव की गति नहीं होती है। इसलिए वे लोकाग्र में रुके हैं।

३-सिद्धदेव के इकत्तीस गुण

एक्कतीसं सिद्धाइ गुणा पण्णत्ता तंजहा—खीणे आभिणिबोहियणाणावरणे, खीणे सुयणाणावरणे, खीणे ओहिणाणावरणे, खीणे मणपज्जवणाणावरणे, खीणे केवलणाणावरणे, खीणे चक्खुदंसणावरणे, खीणे अचक्खुदंसणावरणे, खीणे ओहिदंसणावरणे, खीणे केवलदंसणावरणे खीणे णिद्दा, खीणे णिद्दणिद्दा, खीणे पयला, खीणे पयला पयला, खीणे थीणद्धी, खीणे सायावेयणिज्जे, खीणे असायावेयणिज्जे, खीणे दंसण-मोहणिज्जे खीणे चरित्तमोहणिज्जे, खीणे णेरइआउए, खीणे तिरिआउए, खीणे मणुस्साउए, खीणे देवाउए, खीणे उच्चागोए, खीणे णिच्चागोए खीणे सुभणामे, खीणे असुभणामे, खीणे दाणंतराए, खीणे लाभंतराए, खीणे भोगांतराए, खीणे उवभोगंतराए, खीणे वीरिअंतराए ॥

—समवायांग ३१ वाँ सम०

अर्थ—सिद्ध भगवान् के इकत्तीस गुण कहे गये हैं। ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों का सर्वथा क्षय कर जो सिद्धि गति में विराजमान हैं, वे सिद्ध भगवान् कहलाते हैं। ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों की इकत्तीस प्रकृतियाँ हैं। सिद्ध भगवान् ने इन प्रकृतियों का सर्वथा क्षय कर दिया है। इसलिए उनमें इन इकत्तीस प्रकृतियों

४-सिद्धों की अवगाहना
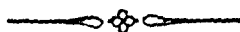
दीहं वा हस्सं वा, जं चरिम भवे हविज्ज संठाणं ।
तत्तो तिभागहीणा, सिद्धाणोगाहणा भणिया ॥१॥
जं संठाणं तु इहं भवे, चयंतस्स चरिमसमयम्मि ।
आसी य पएसघणं, तं संठाणं तहिं तस्स ॥२॥
तिण्णसया तित्तीसा, धणुत्तिभागो य होइ णायव्वो ।
एसा खलु सिद्धाणं, उक्कोसोगाहणा भणिया ॥३॥
चत्तारि य रयणीओ रयणी तिभागूणिया य बोद्धव्वा ।
एसा खलु सिद्धाणं मज्झिम ओगाहणा भणिया ॥४॥
एगा य होइ रयणी, अट्ठेव य अंगुलाइं साहिया ।
एसा खलु सिद्धाणं जहण्ण ओगाहणा भणिया ॥५॥
ओगाहणाइ सिद्धा भवत्तिभागेण होंति परिहीणा ।
संठाणमणित्थंथं, जरामरणविप्पमुक्काणं ॥६॥
जत्थ य एगो सिद्धो, तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्का ।
अण्णोण्णसमोगाढा, पुट्ठा सव्वे वि लोगंते ॥७॥
फुसइ अणंते सिद्धे, सव्वपएसेहिं णियमसो सिद्धा ।
ते वि य असंखिज्जगुणा, देसपएसेहिं जे पुट्ठा ॥८॥

—प्रज्ञापना सूत्र

७—सिद्धों की स्थिति

१-सिद्धे णं भंते! सिद्धत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! * साइए अप्पज्जवसिए।

—प्रज्ञापना सूत्र

अर्थ—श्री गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछते हैं कि—अहो! भगवन् सिद्ध भगवान् की 'सिद्ध' रूप से कितनी स्थिति है?

उत्तर—हे गौतम! एक सिद्ध भगवान् की अपेक्षा सिद्ध भगवान् की स्थिति सादि अपर्यवसित (सादि अनन्त) है।

(शाश्वतस्थिति का कारण)

सिद्ध भगवान् की शाश्वत स्थिति के कारण के विषय में प्रश्नोत्तर रूप से प्रकाश डालते हुए कहा गया है:—

---

* टिप्पणी—जब जीव यहां से मोक्ष जाता है, तब 'अमुक जीव अमुक काल में सिद्ध हुआ। ऐसा काल विशेष लिया जाता है, इसलिए वह सिद्ध जीव अपने सिद्धि गमन काल की अपेक्षा आदि(आदि सहित) है, किन्तु मोक्ष में गये बाद वह जीव कभी वापिस संसार में नहीं आता है। अपितु अनन्तकाल वहीं पर रहता है इस अपेक्षा से वह अनन्त है। इसलिए एक सिद्ध जीव की अपेक्षा से सिद्ध भगवान् की स्थिति सादिअपर्यवसित (सादि अनन्त) है और सब सिद्ध जीवों की अपेक्षा सिद्ध भगवान् की स्थिति अनादि अपर्यवसित (अनादि अनन्त) है॥

ते णं तत्थ सिद्धा भवंति--असरीरा जीवघणा दंसण-णाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ते णं तत्थ सिद्धा भवंति असरीरा जीवघणा दंसणणाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति ?

गोयमा ! से जहा णामए बीयाणं अग्गिदड्ढाणं पुणरवि अंकुरुप्पत्ती ण भवइ । एवामेव सिद्धाण वि कम्म-बीएसु दड्ढेसु पुणरवि जम्मुप्पत्ती ण भवइ । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—ते णं तत्थ सिद्धा भवंति असरीरा जीवघणा दंसणणाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति ।

णिच्छिण्णसव्वदुक्खा,
जाइजरामरणबंधणविमुक्का ।
सासयमव्वाबाहं,
चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥१॥

वितिमिर (कर्मों के आवरण रूप अन्धकार से रहित) विशुद्ध, और शाश्वत हैं। वे शाश्वत अनागत अनन्तकाल तक सिद्ध गति में विराजे रहते हैं।

१. प्रश्न—गौतम स्वामी पूछते हैं कि अहो भगवन्! आप ऐसा किस कारण से फरमाते हैं कि—वहाँ रहे हुए सिद्ध अशरीरी जीवप्रदेशों के घन वाले, दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग वाले, कृतार्थ, कर्मरजरहित, कम्पनरहित, वितिमिर-अज्ञानरहित और विशुद्ध, शाश्वत अनागत अनन्तकाल तक वहाँ रहते हैं?

उत्तर—हे गौतम! जिस प्रकार अग्नि से जले हुए बीज से फिर अङ्कुर की उत्पत्ति नहीं हो सकती है, इसी प्रकार सिद्ध भगवान् का भी कर्म-रूपी बीज जल चुका है; इसलिए उससे फिर जन्म-रूपी अंकुर की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसलिए हे गौतम! मैं ऐसा कहता हूँ कि वहाँ रहे हुए सिद्ध भगवान् अशरीरी, जीवप्रदेशों के घन वाले, दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग वाले, निष्ठितार्थ-कर्मरजरहित, निरंजन, वितिमिर और विशुद्ध होते हैं। वे शाश्वत-सदा काल एवं अनागत अनन्त काल पर्यन्त वहाँ सिद्धगति में विराजे रहते हैं। यथा—

सर्व दुःखों का अन्त किये हुए अर्थात् सर्व दुःखों के पार पहुंचे हुए जन्मजरा मरण के बन्धनों से मुक्त और अव्याबाध-सुख को प्राप्त हुए सुखी सिद्ध भगवान् शाश्वत् सदाकाल एवं अनागत अनन्तकाल तक सिद्ध गति में विराजमान रहते हैं॥

कर्म क्षय करके जो जीव मोक्ष में चला जाता है वह कभी वापिस संसार में नहीं आता है। जैसे बीज के जल जाने पर अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती है, वैसे ही कर्मरूपी बीज के जल जाने पर भव (संसार) रूपी अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती है। क्योंकि जब कारण का नाश हो जाता है तो कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। इसी प्रकार संसार के परिभ्रमण का कारण कर्म हैं। जब कर्म नष्ट हो गये तो संसार परिभ्रमण रूप कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। इस प्रकार सिद्ध जीवों को फिर संसार में आने का कोई कारण नहीं है। वे शाश्वत सिद्ध होते हैं। अतः वे अपर्यवसित (अनन्त) हैं।

जो जीव जिस गति में है वह उस गति से निकल कर दूसरी गति में चला जाय। फिर कालान्तर में वह उसी गति में (जिस गति में से निकल कर गत्यन्तर में गया है वापिस उसी गति में) आवे तो बीच के व्यवधान के समय को 'अन्तर' कहते हैं। जैसे—इस समय कोई एक जीव मनुष्यगति में है वह मर कर देवगति में चला गया। वहीं देवगति की आयु पूर्ण करके वापिस मनुष्य गति में आया तो मनुष्यगति को छोड़ कर वापिस मनुष्यगति में आने के बीच का समय है वह 'अन्तर काल' कहलाता है ऐसा 'अन्तर काल' सिद्ध जीवों में नहीं पाया जाता है, क्योंकि वे मुक्त हो जाने के बाद फिर वहाँ से च्युत हो कर दूसरी गति में नहीं जाते हैं, अपितु वे सदा काल मोक्ष में ही विराजमान रहते हैं, वे शाश्वत सिद्ध हैं। इसलिए अन्तर नहीं पाया जाता है। इसीलिए शास्त्रकारों ने फरमाया है कि—'सादियस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं' अर्थात् सादि अपर्यवसित सिद्ध भगवान् का अन्तर नहीं है।

उत्तर—हाँ, जयन्ती ! सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जायेंगे अर्थात् मोक्ष चले जायेंगे।

(५) प्रश्न—भगवन् ! यदि सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जायेंगे अर्थात् मोक्ष चले जावेंगे तो क्या यह संसार भवसिद्धिक जीवों से रहित (खाली) हो जायगा ?

उत्तर—हे जयन्ती ! ऐसा नहीं होगा। अर्थात् सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जायेंगे तो भी यह संसार भवसिद्धिक जीवों से रहित (खाली) नहीं होगा।

प्रश्न—अहो भगवन् ! यह कैसे ?

उत्तर—जैसे-सर्व आकाश की एक श्रेणी ली जाय। वह अनादि अनन्त होती है और दोनों तरफ से परिमित एवं दूसरी आकाश प्रदेश श्रेणियों से घिरी हुई होती है। उसमें से एक एक समय में एक एक परमाणु पुद्गल मात्र खण्ड निकालते निकालते अनन्त उत्सर्पिणी और अनन्त अवसर्पिणी पूरी हो जाय तो भी वह एक श्रेणी खाली नहीं हो सकती है। इसी प्रकार सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध होंगे अर्थात् मोक्ष चले जायेंगे तो भी यह संसार भवसिद्धिक जीवों से रहित (खाली) नहीं होगा।

(१) केवली णं भंते ! भासेज्ज वा वागरेज्ज वा ? हंता भासेज्ज वा वागरेज्ज वा।

(२) जहा णं भंते ! केवली भासेज्ज वा वागरेज्ज वा तहा णं सिद्धे वि भासेज्ज वा वागरेज्ज वा ? णो इणट्ठे समट्ठे।

सिद्धा णं भंते ! किं कतिसंचिया, अकतिसंचिया, अवत्तव्वगसंचिया ? गोयमा ! सिद्धा कतिसंचिया, णो अकतिसंचिया, अवत्तव्वगसंचिया वि । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सिद्धा कतिसंचिया, णो अकतिसंचिया, अवत्तव्वगसंचिया वि ? गोयमा ! जे णं सिद्धा संखेज्जएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं सिद्धा कतिसंचिया । जे णं सिद्धा एक्कएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं सिद्धा अवत्तव्वगसंचिया । से तेणट्ठेणं जाव अवतव्वगसंचिया वि ।

—भगवतीसूत्र शतक २०/१०

अर्थ—प्रश्न-भगवन् ! क्या सिद्ध भगवान् कतिसंचित (एक समय में संख्याता सिद्ध हुए) हैं ? या अकतिसंचित (एक समय में असख्याता सिद्ध हुए) हैं या अवक्तव्यसंचित (एक समय में एक सिद्ध हुए) हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! सिद्ध भगवान् कतिसंचित हैं और अवक्तव्यसचित भी हैं, किन्तु अकतिसंचित नहीं हैं ।

प्रश्न—भगवन् इसका क्या कारण है ?

उत्तर—हे गौतम ! जो जीव एक समय में संख्याता प्रवेशनक द्वारा प्रविष्ट हुए हैं अर्थात् संख्याता सिद्ध हुए हैं वे कतिसंचित हैं और जो जीव एक समय में एक प्रवेशनक द्वारा प्रविष्ट हुए हैं अर्थात एक सिद्ध हुए हैं वे अवक्तव्य संचित हैं । किन्तु एक समय में असंख्याता जीव सिद्ध नहीं होते हैं, इसलिए सिद्ध भगवान् अकतिसंचित नहीं हैं ।

मुद्रक:—
श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस,
चौमुखीपुल, रतलाम.

चरित्रग्रन्थः—

२७	अमृत चरित्रोद्यान	०-३७
२८	मदनश्रेष्ठीचरित्र	१-५०
*२९	शान्तिनाथचरित्र	१-०-०
*३०	प्रद्युम्नकुमार चरित्र	१-०-०
३१	वीरसेन कुसुम श्री चरित्र	१-०-०
३२	जिनदास सुगुणी ,,	०-५०
३३	धन्नाशालिभद्र ,,	०-१६
३४	भीमसेन हरिसेन ,,	०'३७
३५	हरिवंश ,,	०-१२
*३६	वीरांगदसुमित्र ,,	०-५०
*३७	मृगांकलेखा ,,	०-६२

ॐ
अमोल प्रकाशन
चरित्रग्रन्थः—
२७ अमृत चरित्रोद्यान ०-३७
२८ मदनश्रेष्ठीचरित्र १-५०
*२९ शान्तिनाथचरित्र १-०-०
*३० प्रद्युम्नकुमार चरित्र १-०-०
३१ वीरसेन कुसुम श्री चरित्र १-०-०
३२ जिनदास सुगुणी ,, ०-५०
३३ धन्नाशालिभद्र ,, ०-१६
३४ भीमसेन हरिसेन ,, ०-३७
३५ हरिवंश ,, ०-१२
*३६ वीरांगदसुमित्र ,, ०-५०
*३७ मृगांकलेखा ,, ०-६२